RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 57 अंक : 07 प्रकाशन तिथि : 25 जून कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 जुलाई, 2020

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

पू. श्री नारायणसिंह जी रेड़ा

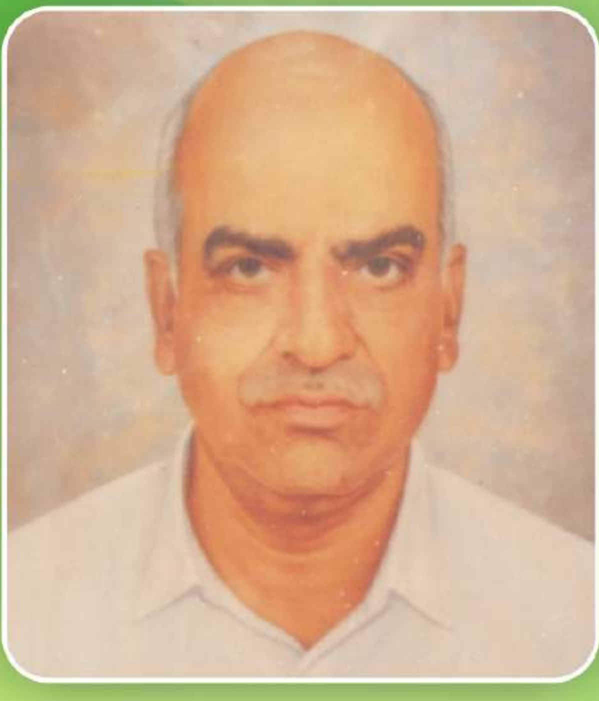

प्यासे प्राणों की ज्योति मन की पहली किरण
मैं तुम्हारी ही केवल कहानी बनूँ
छलके सागर के तीर सूखे नयनों के नीर
मैं बनूँ तो तुम्हारी निशानी बनूँ

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान

फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़

आजाद सिंह राठौड़

सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 जुलाई, 2020

वर्ष : 56 अंक : 07

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
❍ एकनिष्ठ: पू. नारायणसिंह जी	✍ राहगीर	07
❍ नैया पार लगा दे	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	08
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	09
❍ मेरी साधना	✍ प्रो. रूपसिंह लिम्बड़ी	13
❍ रामदेव भक्त : हरजी भाटी	✍ श्री रतनसिंह बडोड़ागाँव	16
❍ सुख और स्वास्थ्य क्या धन में है	✍ श्री रामचरण महेन्द्र	19
❍ मेवाड़ अंचल (सम्भाग) अन्तर्गत.........	✍ स्वामी गोपालआनन्द बाबा	21
❍ विचार-सरिता (पञ्चपञ्चाशत् लहरी)	✍ श्री विचारक	25
❍ जीवन की गीता के सूत्र	✍ स्व. सूरतसिंह कालवा	27
❍ चित्रकथा-'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'	✍ श्री ब्रजराजसिंह खरेड़ा	31
❍ अपनी बात	✍	33

समाचार संक्षेप

धोखेबाज चीन :

हिन्दी-चीनी भाई-भाई के नारे लगाकर चीन के नेताओं का भव्य स्वागत किया भारत ने। चीनी नेताओं ने भी ऐसा ही भाव प्रकट किया। लेकिन कुछ समय बाद ही सन् 1962 में चीन ने भारत पर हमला कर दिया। भारत भाई का सा व्यवहार मानकर बैठा था इसलिए सीमा पर कोई तैयारी भी नहीं थी और परिणामस्वरूप नुकसान उठाना पड़ा भारत को। चीन का व्यवहार धोखेबाज का ही सिद्ध हो गया।

उसके बाद 1967 में नाथुला दर्रे पर सीमा विवाद हुआ। भारत के सैनिक अपनी सीमा पर तीन लाइनों में कंटीले तार लगाने का काम कर रहे थे, उस समय विवाद हुआ। भारतीय सैन्य अधिकारी उनके उठाए गये प्रश्न पर बात करने गए तो उन पर हमला कर उन्हें घायल कर दिया गया। तब भारत ने हमला किया। दोनों तरफ सैनिक हताहत हुए। चीन का अधिक नुकसान हुआ तो फिर दोस्ताना सम्बन्ध की बात करने लग गया। धोखेबाज ऐसा ही करते हैं।

परस्पर बातचीत कर समस्या का समाधान करने की बात चीन करता है पर पिछले कुछ समय से अन्दर ही अन्दर उकसावे की गतिविधियाँ भी करता रहा है। नब्बे के दशक से ही चीन ने सीमा पर घुसपैठ प्रारम्भ कर दी थी। ठहर-ठहर कर सीमा पर अतिक्रमण कर विवाद पैदा करना और फिर बात करना। संसार को दिखावा तो यह कि हम तो शान्ति चाहते हैं पर नये-नये दावे भी सीमा पर करता रहा है। धीरे-धीरे यह सीमा का उल्लंघन बढता गया। वर्तमान राष्ट्रपति के आने के बाद तो सीमा पर चीन का रुख आक्रामक बनता जा रहा है। यह धोखेबाज की सोची-समझी चाल है।

चीन को आर्थिक दृष्टि से संसार की बड़ी ताकत बनाने की मुहीम 1990 से ही चल रही थी जो आज विश्व की बड़ी दो अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। इस आर्थिक तरक्की के साथ उसने अपनी सैन्य शक्ति को भी अत्यधिक बढाया है। अस्त्र-शस्त्रों के भंडार भरे हैं। सीमा तक आसानी से सैन्य बल पहुँचाने के लिये सीमा तक सड़कों का निर्माण कर लिया है। विश्व के अनेक देशों में अपने उत्पाद पहुँचाकर उन्हें चीन पर निर्भर बनाया है। भारत का चीन से आयात चीन को निर्यात से बहुत कम है। अपनी निर्यातशक्ति से संसार के अन्य छोटे देशों की तरह भारत को भी वह प्रभाव में लेना चाहता है।

लद्दाख की गलवान घाटी पर हुई घटना के अनेक कारण हैं। विश्व में भारत के बढते प्रभाव से चीन में भय है। भारत ने पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर पर यदि कब्जा कर लिया तो चीन का बहुत छोटे मार्ग से समुद्र तक पहुँचने का सपना चकनाचूर हो जाएगा। इसलिए न केवल वह स्वयं सीमा पर विवाद में उलझा कर भारत को रोकना चाहता है, बल्कि पाकिस्तान और नेपाल पर भी सीमा सम्बन्धी विवादों के लिये दबाव डाल रहा है। नेपाल में हाल ही में भारत के कुछ क्षेत्र को अपनी सीमा में बताते हुए नक्शा संसद से पास करवाने के पीछे भी यही कारण है।

हाल ही वुहान शहर से निकले कोविड-19 वायरस से पूरा संसार त्रस्त है। इस पीड़ा का परिणाम चीन के विरुद्ध बनी जनधारणा स्पष्ट हो रही है। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, जापान, जर्मनी आदि देश ही नहीं, रूस भी इससे नाराज है। संसार के अन्य देशों की जो व्यापारिक गतिविधियाँ चीन में चल रही हैं, वे वहाँ से निकलने की तैयारी कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में चीन की अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान हो सकता है। यह भी एक कारण है कि इन प्रयासों में भारत साथ न दे इसलिए भारत को दबाया जाए। भारत जी-7 में सम्मिलित न हो, इसके लिये भी दबाव बनाना चाहता है। परन्तु धोखेबाजी स्वभाव वैसा का वैसा है। 15 जून को सीमा से 2 किलोमीटर दूर हटने के लिये बातचीत में तय हुआ था पर नहीं हटे। जब भारतीय सैनिक यह देखने गये तो उन पर किलें लगी लकड़ियों व पत्थरों से हमला कर दिया। चीन की जबान पर विश्वास किया ही नहीं जा सकता।

चीन से सीमा पर तो सेना निपटेगी, अन्य क्षेत्रों में सरकार उपाय करेगी। लेकिन चीन के उत्पादों का बहिष्कार कर उसको आर्थिक नुकसान पहुँचाने का कार्य तो जनता को करना है।

चलता रहे मेरा संघ

{उच्च प्रशिक्षण शिविर गनोड़ा (बांसवाड़ा) में 26 मई, 2019 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी द्वारा शिविरार्थियों हेतु उद्‌बोधित प्रभात संदेश}

'गीता और समाज सेवा' पू. तनसिंहजी द्वारा रचित पुस्तक है जिसमें समझाया गया है कि समाज सेवा क्या है, गीता इस बारे में क्या कहती है। गीता स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के मुख से निसृत वाणी है। उसको संसार के सामने रखा भगवान व्यास ने। पाँच हजार साल पहले वह जितनी प्रासंगिक थी, आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। गीता का पहला अध्याय एक भूमिका की तरह है कि युद्ध किनके बीच हुआ, क्यों हुआ? पहले अध्याय में केवल एक चित्र खींचा है। गीता का कोई उदय नहीं हुआ है। भगवान दूसरे अध्याय के दूसरे श्लोक से बोलते हैं। वहाँ से लेकर अन्त तक प्रश्न-उत्तर चलते रहे हैं। वे उत्तर जितने अर्जुन के लिये प्रासंगिक थे, उतने ही प्रत्येक व्यक्ति के लिये प्रासंगिक हैं, केवल क्षत्रिय के लिये ही नहीं, सभी के लिये। जिसने भी मनुष्य देह धारण किया है, उन सबके लिये उतने ही प्रासंगिक हैं। इसीलिए पू. तनसिंहजी ने उसी को आधार माना। गीता समग्र जीवन का पाठ पढाती है। एक छोटा-सा शास्त्र सात सौ श्लोकों में कहा गया है। उस शास्त्र को जेब में रखा जा सकता है। पूरे जीवन का मार्गदर्शक है, जब भी चाहें तो पन्ना पलटकर देख सकते हैं कि अब मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। उन्हीं का बार-बार स्मरण करवाकर हम क्षत्रिय युवक संघ में चार बिन्दुओं पर विशेष जोर देते हैं, जो गीता में दिया है।

पहला बिन्दु है आचार। आचार का मतलब आचरण। हम करते क्या हैं? करना क्या चाहिए? यही बात क्षत्रिय युवक संघ में कही भी जाती है और उसका व्यावहारिक पक्ष भी समझाया जाता है और दृष्टान्तों से समझाया जाता है। खेलों के माध्यम से समझाया जाता है। प्रवचन के माध्यम से, चर्चाओं के माध्यम से समझाया जाता है कि हमारा आचरण कैसा होना चाहिए। दूसरा बिन्दु है-विचार। आचरण वैसा ही होगा जैसे हमारे विचार हैं। हमारे विचार कैसे होने चाहिए, उनका मार्गदर्शन कैसा होना चाहिए, उन विचारों की शुद्धता की कसौटी क्या है, इसके लिये गीता मार्गदर्शन करती है। गीता क्षत्रिय युवक संघ का आधार है, हमारा मार्गदर्शन करती है, गीता ही मुख्य शास्त्र है। बहुत सरल संस्कृत भाषा में है और शब्दों का जो संयोजन है वह बहुत सरलता से किया गया है। यदि हम इसको याद करना चाहें तो संधि-विच्छेद करके, शब्दों के अर्थ को समझकर हम इसको गा भी सकते हैं। हमारे विचार गीत बन जाएँ। हमारा आचरण संगीत बन जाए।

तीसरा बिन्दु जिस पर गीता में तथा श्री क्षत्रिय युवक संघ के प्रशिक्षण में जोर दिया है, वह है, आहार। हम सुनते आए हैं कि जैसा खायेंगे अन्न, वैसा बनेगा मन। इस बारे में गीता में बहुत स्पष्ट है, ऐसा किसी दूसरे शास्त्र में नहीं मिलेगा। आहार का मतलब है ग्रहण करना। मुँह से जो ग्रहण करते हैं वह कैसा होना चाहिए? वह कैसा आहार हो और कैसा आहार लेने से हमारी वृत्ति किस प्रकार की बनती है, सत, रज और तम इन तीन गुणों में से कौनसा आहार लेने से कौनसा गुण बनता है। हम चाहते हैं शुद्ध सात्विक विचार। शुद्ध सात्विक विचार तभी बनेंगे, सात्विक आचरण तभी बनेगा जब हमारा आहार शुद्ध होगा। सात्विक आहार, जो हमारे विचारों को उद्वेलित न करे, जिससे जीवन में सुख-शान्ति आए। जो स्वादिष्ट भी हो और स्वास्थ्यवर्धक भी हो। जो इन बातों पर ध्यान नहीं देता तो परिणाम गलत आ सकते हैं। प्रारम्भ में क्षत्रिय युवक संघ में भी ध्यान नहीं दिया गया। क्योंकि प्रारम्भ काल था इसलिए ज्यादा सख्ती नहीं हो नियमों में, पर धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों परिपक्वता आई, आहार पर ध्यान दिया जाने लगा। स्वादिष्ट हो पर हमारे विचारों को दुष्प्रभावित करता हो, वह आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए।

हमारी इन्द्रियाँ लपलपाती रहती हैं। बाहर देखती हैं। आँख बाहर देखती हैं, कान बाहर की बात सुनते हैं। जीभ बाहर की वस्तु खाती है। हमारी चमड़ी है वह बाहर की वस्तुओं का स्पर्श करती हैं। इन्द्रियों का यह आहार साधना करते-करते प्रत्याहार बन जाता है। बदल जाता है हमारा आहार। आहार बदलता है तो जीवन बदलता है, वरना जड़ता बनी रहती है। आदिकाल से तामसिक, राजसिक, सात्विक आहार पर विचार प्रकट किए गये हैं, श्रेष्ठ लोगों द्वारा अपनी अनुभूति के आधार पर। ऐसा नहीं है कि क्षत्रिय युवक संघ पहली बार यह बता रहा हो। शराब पीने, माँस खाने, गुटखा खाने, बीड़ी-सिगरेट पीने को कोई शिष्टाचार मानकर यदि छूट चाहता है तो कबाड़ा स्वयं ही कर लेता है। वह केवल अपना कबाड़ा नहीं करता, दूसरों को भ्रमित ही करता है। भगवान कृष्ण ने कहा कि मुझे कुछ भी पाना शेष नहीं है, कुछ भी करना शेष नहीं है पर सदैव मैं सत्कर्म में रत रहता हूँ कि लोग मुझे देखते हैं। मैं यदि आचरण अच्छा नहीं रखूंगा, अच्छे विचार नहीं रखूंगा, अच्छा आहार नहीं होगा तो लोग पतित हो जाएंगे, नरक जाएंगे। तो श्रेष्ठ लोगों का यदि आचरण श्रेष्ठ नहीं है, आहार अच्छा नहीं है तो वे केवल अपने आपको ही छूट नहीं दे रहे हैं, वे अपनी संतान को, अपने मित्रों को भी बिगड़ने का पूरा अवसर दे रहे हैं। इसके बिना तो समाज में कैसे रहें, इस प्रकार की बात करके जो अपने आपको मुगालते में रखते हैं तो वे स्वयं धोखे में हैं। इससे न तो कोई समाज सुधार होता है और न खुद में सुधार होता है। बुरी संगत के कारण, मैं बार-बार बताता हूँ कि बुरी संगत के कारण बुरे आहार के चंगुल में फंस जाते हैं। अत: ऐसी संगत से बचना चाहिए।

चौथा बिन्दु है विहार। आचार, विहार, आहार और विहार। विहार का अर्थ है हम कहाँ रहते हैं? कहाँ जाते हैं? किसके साथ रहते हैं? किनके साथ जाते हैं? किस जगह हम जाते हैं? इन सबका प्रभाव भी हम पर पड़ता है। बहुत सावधानीपूर्वक, पूर्ण तैयारी के साथ अपना जीवन बिताएँगे तो अपना कल्याण कर पाएँगे, अपने लिये यही श्रेयस्कर है। संसार के लिये भी यह श्रेयस्कर है। आज से 100-50 साल पहले तक क्षत्रियों की ओर सारा संसार देखता था। ये क्या करते हैं, वह हमको करना चाहिए। क्षत्रियों का इतना श्रेष्ठ आचरण था। वह धीरे-धीरे बिगाड़ को प्राप्त हुआ। क्षत्रिय बिगड़ा तो संसार बिगड़ा क्योंकि वे क्षत्रियों की तरफ ही देखते थे। उनका आचार, विचार, आहार, विहार बदला क्योंकि जिन्हें वे देखते थे, उनका बदल गया था। श्रेष्ठ लोग सदैव ध्यान रखते हैं कि मेरे अन्दर कोई बुरा विचार न आने पाए क्योंकि मैं श्रेष्ठ व्यक्ति बना रहूँ। हम अपने आपको ज्येष्ठ मानते हैं तो श्रेष्ठ कर्म से ही ज्येष्ठ बन सकते हैं। इन चारों बिन्दुओं को क्षत्रिय युवक संघ में हम व्यावहारिक रूप से आचरण में लानेका प्रयत्न कर रहे हैं। मात्र क्षत्रिय युवक संघ में आने से कोई देव पुरुष नहीं बनते हैं। बनना चाहिए, यह अपेक्षा है। यहाँ आने वालों में श्रेष्ठ गुण होने चाहिए। कोई राक्षसी प्रवृति वाला नहीं होना चाहिए। आक्रामक विचार वाला नहीं होना चाहिए। कोई भी गड़बड़ व्यक्ति नहीं होना चाहिए। कोई भी मिथ्याचारी व्यक्ति नहीं होना चाहिए। अनियंत्रित जीवन वाला हो, ऐसा नहीं होना चाहिए। यही अभ्यास करवाया जाता है, पर सभी ऐसे हो नहीं पाते। एक कक्षा में अनेक विद्यार्थी पढते हैं, गुरु उन सभी को एक ही शिक्षा देते हैं पर सभी एक जैसे नहीं हो पाते। इसलिए यह बहुत कुण्ठा की बात नहीं है कि सभी का आचरण श्रेष्ठ नहीं बना। हम में से कुछ लोग आहार की सात्विकता का ध्यान नहीं रखते होंगे तो वे सत्कर्म से चूक जाते हैं।

यहाँ एक-दो दिन पहले यज्ञोपवीत संस्कार हुआ था। मैंने सुना कि एक व्यक्ति ने यज्ञोपवीत धारण नहीं किया। अच्छा व्यक्ति है, सारी आज्ञाओं का पालन करने वाला है। उसके व्यवहार को देखकर मन करता है कि वह हमारे साथ रहे। लेकिन एक छोटे से कारण, कि यदि मैं यज्ञोपवीत धारण करता हूँ तो मुझे माँस खाना छोड़ना पड़ेगा, इसके लिये यज्ञोपवीत धारण नहीं की। यज्ञोपवीत धारण न करें तो भी माँस खाना तो अच्छा नहीं। आहार

(शेष पृष्ठ 12 पर)

एकनिष्ठः पू. नारायणसिंह जी

– राहगीर

नारायणसिंहजी के बारे में बहुत कम जानकारी है लोगों को। उनके समाज के उनके क्षेत्र के लोग भी बहुत कम जानते हैं। वे क्षत्रिय युवक संघ के तृतीय संघप्रमुख थे अत: संघ के लोगों को कुछ जानकारी है। वे एक ध्येयनिष्ठ व्यक्ति थे। ऐसे व्यक्ति इस बात की परवाह नहीं करते कि मेरे काम को किस प्रकार आंका जाएगा। कितनी निंदा या स्तुति होगी। पू. तनसिंहजी ने हमें मार्ग बताया लेकिन नारायणसिंहजी ने अपने जीवन के व्यवहारिक उदाहरण से यह बताया कि इस मार्ग पर कैसे चलना है। जिस व्यक्ति में एक के प्रति निष्ठा दृढ हो, चाहे वह पति, समाज, नेता, राष्ट्र हो तो वह प्राप्त कर लेता है। पू. नारायणसिंहजी ऐसे ही व्यक्ति थे, उनमें पू. तनसिंहजी के प्रति इतनी निष्ठा थी कि उनके लिये वे ही देवता और भगवान थे। उन्होंने अपनी पूजा में कभी कोई तस्वीर नहीं रखी। हमारे पूजा घरों में अनेकों देवी-देवताओं की तस्वीरें रखी होती हैं, हमने उन्हें सहकारी समिति का रूप दे रखा है।

जब से नारायणसिंहजी तनसिंहजी के हुए, फिर उन्हीं के होकर रह गए। लेकिन इसके लिये उन्होंने घर-बार को छोड़ा नहीं बल्कि प्राथमिकता तनसिंहजी हो गए और शेष सभी द्वितीय वरीयता में रह गए। फिर उन्होंने किसी की परवाह नहीं की। उन्होंने यह नहीं सोचा कि लोग उन्हें कहेंगे कि घर में बड़ा भाई होने के बावजूद घर की जिम्मेदारियाँ निभाने में पूरा समय नहीं दिया। माता-पिता को पूरा समय नहीं दिया, पत्नी-बच्चों को पूरा समय नहीं दिया। और जो इस प्रकार दुनिया की परवाह नहीं करते, वे ही नारायणसिंहजी बनते हैं। जो एक निष्ठ होता है, उसके जीवन में निष्ठुरता और निर्ममता दिखाई देती है क्योंकि उसका लक्ष्य परिवार, पत्नी, माता-पिता, भाई, समाज नहीं होता बल्कि उसका लक्ष्य तो स्वयं द्वारा निर्धारित ध्येय होता है।

तन्मय और समर्पित होकर भक्ति करने पर ही मीरा, महावीर या रामकृष्ण बना जा सकता है। संघ वही बनने का मार्ग है। नारायणसिंह जी ने तन्मय और समर्पित होकर इस मार्ग पर चलते हुए विशिष्ट स्थित पाई। वे साधारणता से असाधारणता की ओर बढे। उन्होंने आदर्श स्वयंसेवक बनकर पू. तनसिंहजी की आदर्श कृति के रूप में संघ मार्ग को परम कल्याण के मार्ग के रूप में सिद्ध किया। उन्होंने संघ के कार्यक्रमों को व्यवस्थित किया। लगातार चार-चार माह तक संघ कार्य हेतु प्रवास पर रहे हैं। स्नेह की तो वे प्रतिमूर्ति थे। प्रत्येक स्वयंसेवक यह समझता था कि जैसे वे उसे ही सर्वाधिक स्नेह करते हैं। उनके इस स्नेह का ही परिणाम था कि वे संघ के घनत्व का आधार बने। उनकी नजर में शिक्षा का महत्त्व इसमें था कि व्यक्ति स्वयं अपने आपको पढे। जो अपने आपको जानता है, वह सबको जानता है।

उनकी नजर में तनसिंहजी ही संघ रूप था। उन्होंने तनसिंहजी को किसी तस्वीर में नहीं बल्कि अपने दिल में कैद कर लिया और उनकी इस एक निष्ठता का ही परिणाम है कि उनके जीवन में वह सब घटा जिसे अवर्णनीय कहा जा सकता है। जो घटा वह हमने देखा मगर उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी उस श्रेष्ठतम स्थिति को देखा, अनुभव किया।

जो जितना एकनिष्ठ होता है वह उतना ही निर्भय होता है। अपनी निष्ठा के मार्ग पर बढते हुए वह किसी बाधा की परवाह नहीं करता है। परवाह वह करता है जिसे किसी से कुछ पाना होता है, उनको वस्तु रूप कुछ चाह नहीं थी। चाह थी तो परम संतोष एवं परम सुख की। इसके लिये उन्हें किसी सांसारिक व्यक्ति की परवाह करने की आवश्यकता भी नहीं थी। एक बार तनसिंहजी ने उनसे पूछा, जब वे भगवती कृषि यंत्रालय में काम करते थे, कि तुम्हें कितना पैसा चाहिए। उनका उत्तर था-उतना जितना आवश्यकता पड़ने पर काम निकल जाए। ऐसे थे

नारायणसिंहजी। हम भगवान से प्रार्थना करते हैं तो वस्तु माँगते हैं, पैसा माँगते हैं और उसमें सुख ढूंढते हैं, लेकिन सीधा सुख नहीं मांगते। यदि सुख ही माँग लें तो वस्तु माँगने की जरूरत ही नहीं पड़े लेकिन हमारी नजरों में सुख वस्तु या पैसों में है। वस्तु आती है और समाप्त हो जाती है। श्रेष्ठ माँग तो उस वस्तु की है जो आये और जाये नहीं। हम प्रभु के प्रसाद को, जो कुछ वे दे रहे हैं, स्वीकार नहीं कर पाते बल्कि हम हमारा आग्रह लादना चाहते हैं, लेकिन नारायणसिंहजी सदैव वैसे चलते रहे जैसे तनसिंहजी ने चलाया। कभी किन्तु परन्तु नहीं लगाया। यही एक निष्ठता उनके जीवन को परम सुख तक ले गई और यही एक निष्ठता हमारे लिये अनुकरणीय है। 30 जुलाई, पू. नारायणसिंहजी के जन्मदिवस पर प्रभु से इसी एकनिष्ठता की कामना करें।

नैया पार लगा दे

– चैनसिंह बैठवास

हे नारायण अन्तर्यामी, घट-घट के हो तुम स्वामी।
परम पूज्य तव चरणों में, शत्-शत् वन्दन हमारा।।

प्रभु तुम हमारे मार्ग दृष्टा, और इस जीवन के प्रेरक।
हे नारायण शरणागत हम, अब पार करो उद्धार करो।।

हम अकिंचन अज्ञानी प्रभु, घिरे हैं घोर अन्धेरे में।
अन्धकार मिटा अज्ञान हटा, अब सत्य राह दिखा दे।।

तुम नारायण आनन्द सागर, और हम हैं मानव मायावी।
प्रभु अब आनन्द की वर्षा कर, जीवन में अमृत छलका दे।।

तुम नारायण पारस सम हो, और हम हैं केवल लोहा।
प्रभु बिन गुण-दोष विचारे, अब करदे कंचन काया।।

प्रभु तुम रमे हरि भजनों में और हम रमे मोह माया में।
मोह माया को तप में जला, अब हरि में चित्त लगा दे।।

अन्तर में गहरे तुम उतरो, रोम-रोम में तुम समाओ।
स्वामी सुप्त चेतना झंकृत कर, अब भक्ति भाव जगा दे।।

श्रद्धा सुमन अश्रुधार लिये, शरण पड़े हैं तिहारे।
हे स्वामी समर्थ गुरु-देवा, अब नैया पार लगा दे।।

* * *

<u>गतांक से आगे</u>

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

गीता के अठारहवें अध्याय के छठे श्लोक में निष्काम भाव से अपने कर्तव्य का पालन करने की बात कही गयी है। समस्त कर्मों को आसक्ति और फलेच्छा का त्याग करके करने की बात कही गयी है। अपनी कामना, ममता और आसक्ति का त्याग करके कर्मों को केवल प्राणिमात्र के हित के लिये करने से कर्मों का प्रवाह संसार के लिये और योग अपने लिये हो जाता है, परन्तु कर्मों को अपने लिये करने से कर्म बन्धनकारक हो जाते हैं।

गीता के तीसरे अध्याय के सातवें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा–''हे अर्जुन जो मनुष्य मन से इन्द्रियों पर नियंत्रण करके आसक्ति रहित होकर निष्काम भाव से कर्मेन्द्रियों के द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।''

पूज्य श्री तनसिंहजी का सारा विचार दर्शन गीता पर आधारित है। श्री क्षत्रिय युवक संघ एक साधना मार्ग है। इस पर चलने वाले हर साधक को निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए। साधक को फलासक्ति का सदैव त्याग करना चाहिए। जो फलेच्छा से कर्म करता है, वह कैसा साधक? वह साधना पथ के लिये अयोग्य है। वह पथ भ्रष्ट व पतित है। साधना में स्वार्थ व कर्तापन का कोई स्थान नहीं है। स्वार्थ चाहे सम्मान प्राप्ति का हो अथवा अधिकार प्राप्ति का हो, यह पतन का मार्ग है। स्वार्थी हमेशा माँग करता रहता है, ऐसा करो, वैसा करो, उन्हें प्राप्ति की भूख सदा बनी रहती है। जब माँग पूरी नहीं होती तो फिर जिद करने लगता है, हठधर्मी बन जाता है। अपनी बात मनवाने की जिद करता रहता है। काम के बदले जो माँग करता है, यह वणिक वृति है जिसमें लेन-देन को पसन्द किया जाता है। ऐसे पथभ्रष्ट साधकों यानी सहयोगियों का मार्गदर्शन करते हुए पूज्यश्री तनसिंहजी ने जो हिदायतें दी, उनकी ही जुबान से –

''तुमने कई बार हठधर्मिता भी की है। तुम्हारी सबसे बड़ी हठधर्मी थी, कि तुम्हारी बात मानी जाए, क्योंकि वह सही है। तुम सही बात कह रहे हो। मैं आश्चर्य करता हूँ, जब तुमने इतनी सब बातें दीं, फिर इस हठधर्मी का त्याग क्यों नहीं किया? मैं मानता हूँ और सदैव मानता रहूंगा कि तुम्हारी सलाह में सदैव सत्य का अंश रहा है और उसे मानने में मुझे कभी कोई एतराज नहीं था, पर तुम्हारे हित के लिये भी मुझे अनुदार बनना पड़ा। तुम आज तक मुझे जो सहयोग देते आये हो, वह अलौकिक सहयोग था, निस्वार्थ सहयोग था, पर अब तुम्हारे सहयोग में यह शर्त कैसे लग गई कि अमुक प्रकार का व्यवहार हमारे साथ करो, तभी हम तुम्हारे साथ रहेंगे। हमारा संपूर्ण विश्वास करो तभी हम तुम्हारा विश्वास करेंगे। हमारा सम्मान करो, तभी हम तुम्हारा सम्मान करेंगे, हमारे अधिकारों को आहत मत करो, तभी हम तुम्हें अधिकार देंगे। मेरे प्रिय सहयोगी! मैं एक अदने आदमी के सहयोग का भी सदैव याचि रहा हूँ, पर मैंने किसी बनिये के आगे अपनी झोली नहीं पसारी है। लेन-देन का मामला मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं। मैं तो याचक हूँ, जिसका काम लेना है। देने के नाम पर तो वह केवल दुआएँ दिया करता है और मैं भी दुआओं के सिवाय तुम्हें कुछ नहीं दे सकता।

मेरी इस घोषणा पर तुम कभी बिछुड़े हो, कभी उदासीन हुए हो और कभी विरोधी भी बने हो, फिर भी तुम्हारे इतने स्वरूप थे, कि यह महान परम्परा कभी क्षुब्ध नहीं हुई। आज बहुत कुछ लेने के बाद भी मैं तुमसे यही कहूँगा, मैं याचि (याचक) हूँ मुझसे जो कुछ मांगोगे, वह मेरे समाज की थाती है। तुम उसे ले लोगे तो हो सकता है कि तुम किसी आर्त और अर्थार्थी के गले पर छुरी चला रहे हो। इसलिये मुझसे कभी माँगा मत करो, जो दे सकते हो दिये जाओ। यदि तुम बदले में कुछ चाहते हो, सम्मान चाहते हो, विश्वास और प्रेम चाहते हो, सत्ता और

अधिकार चाहते हो, जीवन में कुछ बनना चाहते हो, तो मेरे सहयोगी! अभी से सावधान हो जा और अच्छा हो कि अभी से लौट जा, तुमने गलत मार्ग चुना है। यह मार्ग तो याचकों का है जिसमें याचि बनने के सिवाय और कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं रहती, ठोकरों के अतिरिक्त कोई सम्मान नहीं है, नफरत और उपेक्षा ही मेरी कृपा है, सब कुछ लुटाने में ही सत्ता है और उसी का तुम्हें अधिकार है। यह है मेरा मार्ग।''

निष्काम भाव से कर्तव्य कर्म करने वाला कभी निराश नहीं होता क्योंकि उनके सामने असफलता-सफलता की कोई बात नहीं होती, उन्हें तो कर्तव्य कर्म करना है, फल की चाह नहीं, इसलिए विचलित नहीं हो पाता। समाज सेवक के मन में ऐसे ही भाव होने चाहिए ताकि वह निराश न हो।

श्री क्षत्रिय युवक संघ में ऐसे अनेकों व्यक्ति रहे हैं जो पूज्य श्री तनसिंहजी के अच्छे सहयोगियों में से थे। निष्काम भाव से कर्तव्य कर्म करने वाले, पूज्य श्री की हर बात को बिना किसी शंका के मानने वाले अच्छे अनुयायियों में से थे, ऐसे समर्पित स्वयंसेवकों के भावों को पूज्यश्री ने इस तरह व्यक्त किया -

''जैसे रखोगे वैसे खुश ही रहेंगे
जमाने को कौम की रे कहानी कहेंगे।''

पर समय के प्रवाह से या किसी बुरी नजर के लगने से वे ही स्वयंसेवक बदल गये, परिवर्तित हो गये, उनका आचरण एकदम बदल गया, बहकी-बहकी बातें करने लगे और हर काम के बदले शर्तों पर शर्तें रखने लगे, तब पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा -

''प्राण बटोही मेरे युग के प्रभात में
चलते रहे हैं किन्तु ठहरे न रात में
भटके वे मेरे साथी मीठी बहार में।।''

जिन सहयोगियों की श्री क्षत्रिय युवक संघ को जरूरत थी, पूज्य श्री जिनकी अपेक्षा करते थे, उनके अभाव को महसूस करते हुए पूज्य श्री ने कहा -

''कुछ पौधे पनपा करते मुरझाने के लिए''

श्री क्षत्रिय युवक संघ में ऐसे भी स्वयंसेवक यानी सहयोगी हैं जो विपरीत परिस्थितियों में भी निष्काम व निस्वार्थ भाव से संघ कार्य करने में लगे हुए हैं, जो आँधियाँ आएँ और झुके नहीं, तूफान आवें पर जो टूटे नहीं, काँटे चुभें और जो रुकें नहीं, आहें और आँसू जो निकले, तो उन्हें पीकर मुस्करा दे, नफरत के प्याले पीकर जो उन्हीं प्यालों में प्रेम का जल भरकर मनुहार करते हों, ऐसे स्वयंसेवक श्री क्षत्रिय युवक संघ के प्राण हैं, श्री क्षत्रिय युवक संघ की संजीवनी शक्ति हैं। ऐसे स्वयंसेवकों यानी सहयोगियों के बारे में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-

''बहुत बार सावधान करने, बहुत बार उपेक्षा और नफरत करने पर भी तुमने मुझे विश्वास और प्रेम ही दिया, इसीलिए तो तुम मेरे जीवन भर के सहयोगी बन गये हो। अब तुम्हारा और मेरा भाग्य विधाता ने एक धागे में बाँध दिया है। जियेंगे तो मिलकर, भीख मांगेंगे और मरेंगे, तो साथ ही तड़फ कर मरेंगे।

मेरे सहयोगी! जब तुम्हारा और मेरा शाश्वत सम्बन्ध बन गया और तुम मेरे कौटुम्बीय जन बन गये तो कुछ बातों का तुम्हें सदैव ध्यान रखना है। यही बातें मेरे सहयोगी होने की आवश्यक शर्त हैं। (1) जो कार्य दिया जाए, बिना हिचक उसे स्वीकार करो। जब तुम यह कहते हो, कि यह कार्य मुझसे हो नहीं सकता और मैं उसके लिये योग्य नहीं हूँ, इसका अर्थ हुआ, आज तक के तुम्हारे सभी कार्यों का श्रेय लेने की तुम्हारी लालसा है। सोचो यह कि आज तक तुम जो कुछ करते थे, वह भी तुम नहीं करते थे। यही मेरे इस जीवन का सांख्य दर्शन है। कार्य तुम्हें जब सौंपा जाए तब तुम अपनी योग्यता और अयोग्यता पर विचार न करो, क्योंकि तुम इस कुटुम्ब की अलग इकाई नहीं हो, समूह का एक पहलू हो और वह समूह की शक्ति ही है, जो यह कार्य करा रही है। अन्यथा सोचो, कि वह कुटुम्ब न होता, तो आज तक भी तुम जो कुछ कर सके हो, वह भी क्या कभी कर पाते?

(2) जो कार्य दिया जाये, उसके लिये कभी त्याग पत्र न दो। न उस त्याग पत्र की धमकी दो। सहयोगी जीवन

की यह सबसे बड़ी कमजोरी है। तुम्हें यह ध्यान होना चाहिए कि इस कुटुम्ब में तुम्हारी स्वीकृति और त्याग पत्र का समान मूल्य है। न कम न ज्यादा। कभी उसके लिये परेशान न हो।

(3) कार्य लेते, सहयोगी के कार्यकाल के समाप्त होते और सफलता प्राप्त करते अथवा असफल होते तुम्हारे चेहरे पर समान मुस्कराहट होनी चाहिये, तभी कहा जा सकता है, कि तुम कार्य से लिप्त नहीं हो, निष्काम भाव से कार्य करते हो। मेरे जीवन का यही निष्काम कर्मयोग है।

(4) सहयोगी अवस्था प्राप्त करते कभी यह न सोचो तुम्हें कोई अधिकार दिया गया है। इसीलिए तुम्हें अधिकारी नहीं सहयोगी कहा जाता है। सहयोगी होकर जिसे सत्ता का मद सिर पर चढकर बोलता है, उससे मुक्त रहने की कोशिश करो, क्योंकि यह साधक जीवन की सबसे बड़ी छलना है। अधिकार की भाषा में सोचते ही तुम्हें सम्मान की इच्छा होगी और सम्मान की इच्छा पूर्ण न होने पर आहत अहंकार के नाम पर तुम इतिहास के पन्ने उलटने शुरू कर दोगे। कभी शक्तिसिंह के नाम पर प्रताप को दोष दोगे और कभी दुर्गादास के लिये अजीतसिंह का उदाहरण देकर स्वयं को दुर्गादास सिद्ध करोगे। इन छलनाओं में फंसकर तुम मेरे इस याचक जीवन को राजाओं का जीवन बना डालोगे और यही है सबसे बड़ा खतरा, कहीं याचि राजा बनने के स्वप्न न देखने लग जाये।

(5) कार्य करते समय सभी में समभाव को धारण करो। घृणा, लज्जा और भय का परित्याग करो, क्योंकि हर ईमानदार आदमी ऐसा करता है। तुमने जिस किसी से घृणा की उसके निर्माण में माध्यम के रूप में तुम नहीं रह सकते। यह सोचो कि तुम भी एक दिन उसी जैसे थे, जिससे आज तुम घृणा कर रहे हो, अथवा एक दिन तुम भी शायद ऐसे बन सकते हो। जो कुछ घृणा योग्य दिखाई दे रहा है, वह मात्र लीला है। महान कार्य को सम्पादित होने के लिये भूमिका है, और कुछ नहीं।

(6) सदैव कार्य करते यह सोचो, कि तुम किसी को शिक्षित नहीं कर रहे हो, किसी का निर्माण नहीं कर रहे हो बल्कि स्वयं परीक्षा दे रहे हो। ऐसी परीक्षा जिसमें बिरला ही कोई उत्तीर्ण होता है। सहयोगी अवस्था को प्राप्त होने का अर्थ है परीक्षाओं के जटिल उलझन में फंसना जिसके पार आगे का विकास है और जिससे गिरने का परिणाम होगा, जो कुछ मिला उसे भी खोकर फिर नये सिरे से अध्ययन करना। मेरे सहयोगी! तुम्हारी यह विकट परीक्षा है और इसमें तुम्हें अपना संतुलन अवश्य बनाए रखना चाहिए। यदि तुम स्वयं परिक्षाएँ लेने लग गये तो तुमने मेरे कुटुम्ब का बस बंटा ही ढार कर दिया और तुम एक अयोग्य सहयोगी निकलोगे।

(7) पश्चिम की वैयक्तिक स्वाधीनता की सुन्दर फांसी में कभी मत फंसना। यह ऐसी लुभावनी फिसलन है, जो माँग के रूप में बड़ी ही युक्तिसंगत और उचित मालूम होती है, किन्तु परिणाम में तुम्हारे और मेरे सभी प्रयासों की धूल उड़ा सकती है। अपने व्यक्तित्व को विशेष रूप से खपा देने के बाद ही हम नींव के पत्थर बन सकेंगे, जिस पर हमारे इस जीवन का समाज भवन बन सकेगा। जो कुछ मिले, उससे सन्तुष्ट रहना, जो कुछ प्रताड़नाएँ मिले, उसे वरदान समझकर ग्रहण करना और कभी शिकायत नहीं करना, यही है हमारे चरित्र की महान विशेषता। हनुमान की भाँति तेल-सिन्दूर से ही सन्तुष्ट रहना बहुत ही कम लोगों को आता है, पर भाई का भेद बताने वाले विभीषणों को तो वक्त से पहले ही लंका का उत्तराधिकारी घोषित करना पड़ता है। सोच लो तुम विभीषण बनना पसन्द करते हो, अथवा हनुमान।

(8) सच्चाई और ईमानदारी ही वे गुण हैं जो सदैव तुम्हारे साथ रहेंगे और वे हर किसी के साथ रहेंगे, इसलिए किसी की सिफारिश नहीं करनी चाहिए। और न सुननी चाहिए, साथ ही न लोगों के दोष सुनो और न छिद्रान्वेषण करो। तुम सिफारिश करके अपने निम्न स्तर की स्थिति का प्रदर्शन करते हो, क्योंकि उसे सब मालूम है। जिसकी बात करने के लिये तुम उतावले हो रहे हो और तुम किसी की जो बात कहोगे उसके साथ अपने आपको अनावश्यक रूप से जोड़कर अपने आपको नीची श्रेणी में ले आते हो।

फिर तुम्हारी मर्जी! मैंने तो जो तुम्हारे हित में दिखाई देने वाली बातें थीं, तुम्हें बता दी। इन बातों का शतांश भी असर तुम्हारे अन्दर होता है तब तक मैं तुम्हारा मौन प्रशंसक होता हूँ। तुम्हारी तलवार की धार पर चलने की क्षमता से ही मैं बहुत कुछ सीखता हूँ। मेरे तुम प्रेरणा के अक्षय स्रोत बनते हो। जिस दिन तुम गुणों से पिण्ड छुड़ाते हो, उस दिन तुम से मेरा पिण्ड छुड़ाना कठिन नहीं है। पर मैं यही चिन्ता किया करता हूँ, कि प्रत्येक सहयोगी महान हो, पवित्र हो और अद्वितीय हो। ऐसा, कि जहाँ कहीं जाये, चारों ओर का वातावरण ज्ञान और प्रकाश से परिपूर्ण हो जाये। सहस्रों लोग उससे प्रेरणा प्राप्त करें। तुमसे मेरी वही इच्छा है और मैं समझता हूँ तुम सदैव मेरी बात मानते आये हो और यह भी सुनोगे।

मैंने अपने जीवन में जान-बूझकर घटनाओं का वर्णन नहीं किया है, क्योंकि उससे तुम्हारा तथाकथित अहंकार आहत होता है, पर ध्यान रहे, अब मैं तुम्हारे इस अहंकार को आहत ही नहीं करूंगा, इसका समूल नाश करूंगा।''

(क्रमशः)

पृष्ठ 6 का शेष **चलता रहे मेरा संघ**

शुद्धि नहीं रहती। यज्ञोपवीत तो एक बन्धन है जो हमें याद दिलाता है कि मैं क्षत्रिय युवक संघ का स्वयंसेवक हूँ। मैं क्षत्रिय हूँ। मैं एक श्रेष्ठ व्यक्ति हूँ, मैं संस्कारित व्यक्ति हूँ। अतः मेरा व्यवहार असंस्कारी न बन जाए। जब से संस्कारों का महत्त्व हमारे जीवन में घटा, तब से ही हमारा पतन हुआ है। हमारा पतन संसार के पतन का कारण बनता है। हम उठेंगे तो संसार उठ जाएगा और सबसे पहले मैं उठूंगा। हम उठेंगे, हमारा परिवार उठेगा, हमारा गाँव उठेगा, हमारा देश उठेगा और सारा संसार उठेगा। यह एक शृंखला है, जिसमें हमारी कड़ी का महत्त्व समझना है। बहुत धीरज से यह बात समझाई जाती है। उसे स्वीकार करना चाहिए। जो चूक जाता है, वह हिंसक बन जाता है। आत्महीन बनकर दूसरों को आत्महीन बनने की राह दिखाता है कि यह भी छूट ले रहा है तो मैं भी छूट ले लूँ। अनेक लोगों को पथ भटकाने वाला बनता है। इसलिए अपने जीवन पर पूरा ध्यान रखना है। आचार, विचार आहार, और विहार से हमारे जीवन को बांध की तरह मजबूत बनाते हैं। बांध नदियों के प्रवाह को रोक कर, जल संग्रह कर उसका उपयोग कराने का कारण बनता है। उसमें एक छोटा-सा छेद भी रह जाता है तो धीरे-धीरे छेद बढकर कितना नुकसान कर देता है। अतः पूरी सावधानी रखने की क्षत्रिय युवक संघ हमें शिक्षा देता है। उसको हम जीवन में धारण करें। हमारा जीवन सदैव आत्म नियंत्रित हो। हमारा आचार, विचार, आहार व विहार श्रेष्ठ हो। आज के मंगल प्रभात में हम सबके लिये क्षत्रिय युवक संघ की ओर से यही मंगल संदेश है।

वस्तुतः अन्धा कौन?

वस्तुतः अंधा वह जन नहीं,
ज्योतिहीन है जिसकी आँख।
वस्तुतः अंधा तो वह जन है,
जो निज दोषों को रखता है ढाँक।।

कुटिल जन और कोयला

कुटिल जन और कोयला दोनों एक समान,
शीतल होंगे तो लगाएंगे काला।
इन दोनों की उष्णता होती है घातक,
जो तन मन को जलाती बिना ज्वाला।।

– शूम्भसिंह राजावत 'अल्पज्ञ'

<u>गतांक से आगे</u>

मेरी साधना

लेखक - पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य-श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद-प्रोफेसर रूपसिंह लिम्बड़ी

अवतरण-37

स्व-धर्म के सुन्दर मार्ग पर अग्रसर होते समय पूर्ण निर्बलता की अनुभूति हुई। आत्म-निरीक्षण करने पर कारण ज्ञात हुआ कि मैं एक बड़े सत्य को अब तक विस्मृत कर रहा था। इस मार्ग पर चलने के लिये माँ शक्ति की अनुकम्पा, उसके आशीर्वाद की नहीं उसके सक्रिय सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। तो दौडूँ माँ के पवित्र मंदिर की ओर! उसे मनाऊँ! क्या प्रतिकार माँगेगी वह?

इसके पूर्व के अवतरण में हमने देखा कि साधक भव्य प्रभावक एवं समर्थ समाज के निर्माण का संकल्प करता है। समाज निर्माण का कार्य भी स्वधर्म है। परन्तु जैसे ही वह समाज निर्माण के अपने संकल्प की पूर्ति के लिये कदम उठाता है, उसे अपनी निर्बलता ही नहीं, पूर्ण निर्बलता का अनुभव होता है। स्वधर्म पालन का मार्ग बहुत कठिन है। कंटकाकीर्ण है। उस मार्ग पर चलने के लिये केवल शारीरिक ही नहीं, आत्मबल की भी बहुत आवश्यकता होती है। और यह बल किसी महापुरुष अथवा देवी-देवताओं के आशीर्वाद या कृपा मात्र से नहीं प्राप्त होता है। उसे पाने के लिये स्वयं का पुरुषार्थ आवश्यक है। **'मनुष्य यत्न, ईश्वर कृपा'** वाला विधान इस बात का निर्देश करता है कि बिना हमारे पुरुषार्थ के ईश्वर भी सहायता नहीं कर सकता है। यहाँ भी साधक कहता है कि मुझे माँ के आशीर्वाद की और अनुकम्पा की आवश्यकता नहीं है। उसके सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है। इसका रहस्य यह है कि साधक को खुद को, अपने आपको बल प्राप्त करना होगा। अपने आप में बल जगाना होगा। **'स्वयंमेव मृगेन्द्रता'** की बात है। इस बल की प्राप्ति के लिये वह माँ के मन्दिर की ओर दौड़ता है। कहाँ है माँ का मन्दिर? क्या बलिदान माँगेगी माँ? ये सब प्रश्न एक गहरे और गंभीर चिन्तन का विषय है।

माँ का मन्दिर न किसी पर्वत पर है, न किसी नदी के तट पर है। वह है हमारे भीतर। हमारे अन्दर हमें अपने आपको टटोलना है। हमारी निष्क्रियता ने ही हमें निर्बल बना दिया है। हमारी कार्यशक्ति पर जंग लग गया है। इस जंग को दूर करने के लिये हमें अपने को घिसना होगा। घिसने-घिसाने में पीड़ा है। बिना पीड़ा सहने के चमक नहीं आयेगी। बिना चमक के चमत्कार नहीं होगा। बिना चमत्कार के प्रभावकता प्राप्त नहीं होगी। हमारी थोड़ी-सी भी सक्रियता से व्यक्तिगत एवं समूहगत जीवन चकचकित हो उठेगा। आज हमारे पास बौद्धिक नेतृत्व का अभाव नहीं है। जो अभाव है वह सक्रिय कार्यकर्ताओं का है।

साधक का संकल्प है भव्य समाज भवन का निर्माण, अर्थात् सामाजिक पुनरुत्थान! इसकी योजना बनती है। कार्यक्रम की संपूर्ण रूपरेखा भी दी जाती है। परन्तु क्या कार्यक्रम जिस रूप में होना चाहिए, होता है? स्वप्न है तो संकल्प है। संकल्प होगा तो संकल्प सिद्धि के लिये कठोर परिश्रम की आवश्यकता होगी। क्या हम कठोर परिश्रम के लिये तैयार हैं? जब तक हमें अपनी वर्तमान स्थिति की पीड़ा नहीं होगी, हम इससे मुक्त होने का प्रयत्न भी नहीं करेंगे। जब तक हम अपनी वर्तमान स्थिति में अपने प्रयत्नों में संतुष्ट रहेंगे-'हमने बहुत कुछ किया है, हम बहुत कुछ कर रहे हैं' यह भाव रहेगा। हम संकल्प सिद्धि से दूर ही रहेंगे। किसी ने ठीक ही कहा है-'सन्तुष्टा क्षत्रियः नष्टाः'।

स्वधर्म के पालन के बिना स्वजाति उत्थान संभव नहीं है। स्वधर्मपालन के लिये निजी सुख-सुविधा का त्याग करना होगा। संकल्प जितना बड़ा होगा, त्याग उतना ही अधिक करना पड़ेगा। धन्य हैं वे लोग जो अपने स्वधर्म का पालन करते-करते अपने आपको इतिहास के पृष्ठों पर स्थापित कर गए। हम परमशक्ति से प्रार्थना करें कि वह हमें कष्ट सहन करने की क्षमता दें। हम अपने बल और शौर्य से पुनः अपने गौरव, वैभव एवं प्रभाव को स्थापित करने में सफलता प्राप्त करें।

दुख और कठिनाइयों का इतिहास ही सुयश है,
मुझको समर्थ कर तू बस कष्ट के सहने में।

''क्षत्रिय के गुण व प्रकृति के अनुसार प्राप्त उसको अपना क्षात्रधर्म उसके जीवन विकास का एक प्राकृतिक साधन है और संगठन समाज की प्राकृतिक अवस्था है। इसलिए संगठित होकर 'स्वधर्म' का पालन करना आज के क्षत्रिय का एकमात्र और परम साधन है।''

– पू. तनसिंहजी, संघशक्ति का 51 वर्ष पूर्ण होने पर प्रकाशित विशेषांक से।

अवतरण–38

ओ देवी! सिंह–वाहिनी, असुर संहारिणी, शुम्भ–निशुम्भ–निपातिनी, मुण्ड–मालिनी, चक्र–धारिणी, रक्तबीज–नाशिनी तेरा यह रौद्र रूप शत–शत कोटि बार वन्दनीय है। समस्त विश्व का धारण और संहार करने वाला तेरा यह प्रचण्ड चण्डी रूप स्तुत्य है। तू जीवन का जीवन, प्राणों की प्राण, आत्मा की आत्मा है। विश्व के कण–कण में तेरी सत्ता व्याप्त है। तो तू कहाँ है और कहाँ नहीं?

जब साधक स्वधर्म के मार्ग पर अग्रसर होता है तो उसे अपनी निर्बलता का अनुभव होता है। स्वधर्म के मार्ग पर चलने में जिस बल की आवश्यकता है, उसका अपने में अभाव है, ऐसा महसूस करके बल प्राप्ति के लिये परमशक्ति के मन्दिर में जाता है। वह परमशक्ति के सक्रिय सहयोग के लिये प्रार्थना करता है।

इस अवतरण में परमशक्ति के स्वरूप और सामर्थ्य का वर्णन है। इस परम शक्ति का स्वरूप कैसा है? वह सिंह वाहिनी है अर्थात् अपनी सवारी के लिये उसने सिंह को पसन्द किया। सिंह पर बैठकर वह चण्ड–मुण्ड नाम के महा भयंकर असुरों का, उनकी चतुरंगिणी सेना के साथ वध करने वाली है। चामुण्डा नाम धारण करके रक्त बीज का वध किया। माँ शक्ति के बल, शौर्य, सामर्थ्य का वर्णन मारकण्डेय पुराण में सावर्णिक मनवन्तर की कथा के अन्तर्गत देवी भागवत में विशद रूप से मिलता है।

जिस माता ने चण्ड–मुण्ड–शुंभ–निशुंभ जैसे महाप्रलयंकारी असुरों का नाश किया, वह माता अपने गले में मुण्डमाला धारण किए हुए है। हाथ में भगवान का सुदर्शन चक्र धारण किया है। महाचण्डी, महाकाली, महारौद्र रूप धारण करने वाली माँ का साधक वन्दन करता है और उसकी स्तुति करते हुए उसकी सर्वव्यापकता और सर्व समर्थ रूप का वर्णन करता है। और उससे केवल शाब्दिक आशीर्वाद नहीं अपितु सक्रिय सहयोग के लिये प्रार्थना करता है।

साधक को अपने समाज का उत्थान करना है। उसमें अनेक बाधाएँ हैं। उन बाधाओं को दूर करने की शक्ति, बल उसे चाहिए।

एक बात हमें यहाँ समझने की है कि यह माँ कौन है? कहाँ है? कहाँ है उसका मंदिर? तो साधक ने स्पष्ट रूप से कहा है–'विश्व के कण–कण में तेरी सत्ता व्याप्त है। तो तू कहाँ है और कहाँ नहीं'। साधक के इस विधान पर हमें चिन्तन करना होगा। विश्व के कण–कण में होने का मतलब है कि वह महान शक्ति हमारे समाज के प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर बैठी है। हर एक क्षत्रिय चाहे वह बच्चा हो, युवा हो या वृद्ध हो, वह शक्ति का भण्डार है। परन्तु आज वह शक्ति निष्क्रिय है। हम देखते हैं, सामाजिक उत्थान, सामाजिक जागृति के लिये जब किसी कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है तो ऐसे बहुत से भाई–बन्धु मिलते हैं जो कहते हैं–''आप जरूर यह कार्यक्रम करें, हम आपके साथ हैं।'' यह उनका शाब्दिक सहयोग है। फिर न तो ऐसे भाई–बन्धु कार्यक्रम की उद्देश्य पूर्ति के हेतु में किसी भी प्रकार का सहयोग देते हैं और न ही कार्यक्रम के समय उपस्थित रहते हैं। तो साधक माँ को सम्बोधित करके उन सभी साथियों से कहता है कि केवल शाब्दिक आशीर्वाद या शुभेच्छा से काम नहीं बन पाता है। आपके सक्रिय सहयोग की आवश्यकता है।

सब मिलकर काम में लग जाएंगे तो सामुहिक बल, सामुहिक शक्ति एक व्यापक प्रभाव पैदा करेगी। कार्यकर्ताओं में उत्साह भरने और अपने लक्ष्य की पूर्ति में शीघ्रता होगी।

अर्क–'सहवीर्यं करवावहै' का संदेश है इस अवतरण में

अवतरण-39

तू इतनी प्रचण्ड-रूपा, क्रूर-कर्मा, कठोर-स्वभावा होते हुए भी कितनी मोहनी-रूपा, क्षमा-सिन्धु और दयामयी है। क्यों न हो, जगज्जननी जो ठहरी। समस्त विश्व की श्रद्धा और भक्ति का आलम्बन और वात्सल्य का आश्रय, भिन्नता में अभिन्नता को धारण किए हुए, अनेक-रूपा होते हुए भी एक-रूपा, तू सिंह पर आरूढ कितनी शोभायमान हो रही है। शक्ति, शील और सौन्दर्य के अनुपम सामञ्जस्यपूर्ण इस रूप का मेरे मन-मन्दिर में निवास हो! देवी प्रार्थना है!

पूर्व अवतरण में माँ का रौद्र रूप देखा। साधक ने माँ के रौद्र रूप का वर्णन किया। यह रौद्र रूप असुरों के संहार के लिये आवश्यक है। जगत जननी, विश्वव्यापिनी माँ का यह प्रचण्ड रूप स्थायी नहीं है, परन्तु दुष्टों की दुष्टता जब सीमा का उल्लंघन करके संसार के निर्दोष प्राणियों को पीड़ा देती है तो उसको उचित दण्ड देने के लिए ऐसा विकराल स्वरूप धारण करना पड़ता है। जैसा कर्म करना है, वैसा रूप लेना पड़ता है। किन्तु वास्तव में तो माँ का मोहक रूप ही उसकी क्षमाशीलता और दयालुता का द्योतक है। माँ के अनेक रूप हैं, उनमें साधक को माँ का सिंह वाहिनी रूप, सिंह पर आरूढ माँ का रूप अधिक सुहावना लगता है। और उस रूप को अपने मन मन्दिर में स्थापित करना चाहता है, इसलिए प्रार्थना करता है, हे माँ! आपका शक्तिशील और अनुपम सौंदर्य के सामञ्जस्यपूर्ण रूप का मेरे मन मन्दिर में निवास हो। देवी! यही मेरी प्रार्थना है।

हम भी चाहते हैं कि साधक की श्रद्धा भक्ति हम में प्रगट हो और हम भी यही प्रार्थना करें-उस परमशक्ति का हमारे मन मन्दिर में भी निवास हो। जब माँ का वह रूप हमारे मन मन्दिर में स्थापित होगा तो हमारे समाज के अनिष्टों-दूषणों का अपने आप नाश हो जायेगा। बस, आवश्यकता है उस परमशक्ति का हमारे हृदय में वास हो।

अर्क- ऊँ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आसुव।।

अवतरण-40

शंख, चक्र, गदा, पद्म, त्रिशूलधारिणी अम्बे! तेरा यह सात्विक वीर-वेष क्षात्रधर्म का पूर्ण मूर्तिमान प्रतीक है। तू साक्षात् शक्ति, तेरा वाहन शौर्य का पूर्ण द्योतक और हाथों के सभी आयुध भी शक्ति के पूर्ण प्रतीक हैं। तो मैं शक्ति का उपासक क्यों अशक्त साधनों को प्रयोग में लाने लगा, देवी! मैं तेरे संपूर्ण रूप का उपासक हूँ। मेरा साध्य, साधना और साधन शक्ति से ओतप्रोत हो। अभीप्सा पूर्ण कर माँ!

शंख चक्र गदा शार्ङ्ग गृहित परमायुधे।
प्रसीद वैष्णवी रूपेण नारायणि नमस्तुते।।

शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुष्य रूप उत्तम आयुधों को धारण करने वाली वैष्णवी शक्तिरूपा देवी नारायणि को नमस्कार हो।

शंख, चक्र गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम्।
खेटकं तोमरं चैव परशुं पाश मेव च।
कुन्ता युधं त्रिशूलं च शार्ङ्गं मायुधमुत्तमम्।।

शंख, चक्र, गदा, शक्ति, हल और मुसल, खेटक और तोमर, परशु तथा पाश, कुन्त और त्रिशूल शौर्य एवं वीरता जैसे सूक्ष्म गुणों का स्थूल-मूर्त रूप है। और क्षत्रिय के उपास्य देवी-देवता शौर्य के प्रतीक हैं। माँ अम्बा का यह शौर्य रूप अस्त्र-शस्त्र सज्ज वीर वेष क्षात्रधर्म का पूर्ण मूर्तिमान प्रतीक है। और यही हमारा आदर्श है। क्षत्रिय कैसा हो? ऊँची पड़छंद काया, विशाल वक्षस्थल, हाथी की सूंड जैसी भुजाएँ, तेजस्वी आँखें, आकृति को देखते ही विरोधियों की आधी शक्ति क्षीण हो जाए, ऐसी शारीरिक आकृति एवं ताकत क्षत्रिय का प्रथम लक्षण है। तलवार, भाला, बरछी, सांग जैसे शस्त्र चलाने की शारीरिक क्षमता और साथ ही साथ बौद्धिक शक्ति से शत्रुओं का प्रतिकार करने की क्षमता और साहस क्षत्रिय का सहज स्वभाव है।

साधक को इस बात का दुख है कि ऐसी शक्ति का उपासक आज अशक्त साधनों का प्रयोग करने लगा है। क्षत्रिय का साध्यशक्ति है। साधना भी शक्ति है। और साधन भी शक्ति

(शेष पृष्ठ 30 पर)

रामदेव भक्त : हरजी भाटी

– *रतनसिंह बडोड़ागाँव*

जैसलमेर के महारावल दूदा जी जसोड़ (1299-131 ई.) के पुत्र बीसलदेव जी हुए जिन्होंने बीसलपुर बसाया। बीसलदेव जी के आठ कुँवर हुए। उनके ज्येष्ठ पुत्र कड़वो जी ने भैंसड़ा बसाया तथा सबसे कनिष्ठ पुत्र नटुसिंह जी के कूम्पसिंह जी हुए, कूम्पसिंह जी के पहले कुँवर रायमल जी ने मारवाड़ में ओसियाँ के पास ''रायमलवाड़ा'' व दूसरे कुँवर नींबा जी ने ''नींबे रो तळाव'' गाँव बसाये। रायमल जी की पीढ़ी-हेमराज जी- सुआलाल जी- सुरतानसिंह जी- रघुदास जी- कचरसिंह जी। संवत् 1735 भादवा सुदी बीज व शुक्रवार को कचरसिंह जी के घर हरजी भाटी का जन्म हुआ। बाबा रामदेव जी के भक्ति-साहित्य में भक्त कवि हरजी भाटी का स्थान सर्वोच्च है। वे रामदेव जी के अनन्य व परम् भक्त थे। वे जीवन पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचारी रहे तथा बाबा रामदेव जी की महिमा का प्रचार करते रहे। उनके भाई करमसी जी के वंशज वर्तमान में चाडी में रहते हैं।

पाण्डवों के उत्तराधिकारी राजा परीक्षित की वंश परम्परा में प्रतापी राजा तोम-तुंग हुए जिनके वंशज तोमर/तुंवर कहलाए। दिल्ली में तुंवरों का शासन रहा। इसी राजवंश में राव रणसी जी हुए। वे अपने दो पुत्रों धनरूप देव जी व अजमल देव जी के साथ मारवाड़ में पधारे। धनरूपदे जी के दो कन्याएँ सुगना व लाछा हुई। ठाकुर अजमल देव जी का विवाह छायण के भाटी जागीरदार की राजकुंवरि मेणादे के साथ सम्पन्न हुआ। वर्तमान बाड़मेर जिले के ऊण्डू-काश्मीर गाँव में विक्रम संवत् 1409 चैत्र शुक्ल पंचमी को उनके घर वीरमदेव जी व रामदेव जी का जन्म हुआ। दोनों कुँवरों का बचपन रूणिचा में बीता। रामदेव जी की अमरकोटी सोढ़ी रानी नेतलदे के दो पुत्र हुए-सादो जी व देवराज जी। लोक देवता बाबा रामदेव ने अपनी अनेक लीलाएँ करने के बाद संवत् 1442 में भादवा सुदी दशमी को रामसरोवर की पाल के पास समाधि ली। वहाँ अब भव्य पूजा स्थल बना हुआ है, जहाँ लाखों श्रद्धालु दर्शनार्थ आते हैं। रामदेव जी द्वारा समाधि लेने के लगभग तीन सौ साल बाद हरजी भाटी का अवतरण हुआ। परन्तु बाबा रामदेव जी के अश्वारूढ़ चित्र में हरजी भाटी को चँवर ढुलाते हुए दिखाया जाता है, जो उनकी अनन्य भक्ति का ही प्रमाण है।

पीछम धरा सूं म्हारा पीर जी पधार्‌या,
घर अजमल अवतार लीयो।
लाछां सुगना बाई करे हर री आरती,
हरजी भाटी चँवर ढोळे,
बैकुण्ठां में बाबा होवे थांरी आरती।

ओसियाँ से बारह किलोमीटर उत्तर में स्थित है- पण्डित जी की ढाणी। यह ढाणी बैठवासिया का ही एक भाग है, जहाँ हरजी का बचपन बीता तथा यहीं उन्होंने भक्ति धारा बहायी। यह पहले चैनाणा (चैनपुरा) कहलाता था जो बाद में हरजी की ढाणी या पण्डित जी की ढाणी कहलाई। हरजी बचपन से ही होनहार व साहसी प्रवृत्ति के धनी थे। वे जब पन्द्रह साल के थे तभी ऐवाड़की-धोरे में ऐवड़ चराते समय उन्हें पहली बार बाबा रामदेव जी के दर्शन हुए, पर वे उन्हें पहचान न सके।

संवत् 1757 में ज्येष्ठ वदी पंचमी का दिन था। हरजी अपने निवास से दक्षिण में एक कोस दूर स्थित बैठवासिया भाखर की तलहटी में अपनी भेड़-बकरियाँ चरा रहे थे। तभी बाबा रामदेव जी साधु वेश में पधारे। बाबा जी ने हरजी से बकरी का दूध माँगा। हरजी ने कहा महाराज मेरी बकरियाँ तो छोटी व बिन ब्याही है। साधु ने पुनः आग्रह करते हुए कहा कि मुझे तो तुम्हारी समस्त बकरियाँ के थनों में दूध दिखाई दे रहा है। लो यह कटोरा (चीपी) व इसमें दूध निकाल ले आओ। हरजी दूध निकालने लगे तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि थनों से दूध की अविरल धाराएँ बहने लगी। साधु ने हरजी को दूध पीने को

कहा पर उन्होंने मना कर दिया। साधु ने दूध पीकर पानी लाने हेतु कटोरा पुन: हरजी को दे दिया।

हरजी जानते थे कि तालाब सूखा हुआ है। पर वे संकोच वश चल दिए। भाखर पर चढ़कर देखा तो तालाब में पानी हिलोरे मार रहा है। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। तभी कौतूहल वश उन्होंने कटोरे पर लगे दूध के झाग चखे तो उन्हें अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया। उन्हें ज्ञान हुआ कि वे पिछले कई जन्मों से भगवान के भक्त है तथा साधु वेश में स्वयं रामदेव जी महाराज पधारे हैं। वे पानी लेकर लौट आए तो उन्हें कृष्णावतार बाबा रामदेव जी के साक्षात् दर्शन हुए। वे उनके चरणों में गिर गए। बाबा जी ने उन्हें कपड़े का घोड़ा दिया व आशीर्वाद दिया कि जब-जब मुझे पुकारोगे मैं स्वयं प्रकट होकर तुम्हारी सहायता करूंगा। बाबा रामदेव जी अन्तर्ध्यान हो गए।

हरजी ने अपनी वाणी में इस प्रसंग का सुन्दर वर्णन किया है -

पहला परम गुरु परचिया, बन बीच रैवाणी।
विगत कर बतळाविया, साधे सारंग पाणी।।
टेळे सूं हाजर हुया, सायळ अन्तर आणी।
तीन लोक रा राजवी, म्हैं हर जी सोज नीं जाणी।।

संवत् 1757 में हरजी को रामदेव जी द्वारा मन्दिर बनाने का आदेश मिला। हरजी के पास आर्थिक संसाधन न होने के कारण वे उलझन में थे। पाली में रायपुर के ठाकुर असाध्य रोग से पीड़ित थे। उन पर बाबा रामदेव जी की कृपा होने से वे ठीक हो गए। उन्होंने हरजी की आर्थिक मदद की। पण्डित जी की ढाणी में बाबा रामदेव जी का प्रथम व भव्य मन्दिर बनवाया गया। वर्तमान गादीपति श्री श्री 108 श्री पण्डित जी महाराज श्री रूपदास जी ने मुझे बताया, ''रामदेव जी के मन्दिर की प्रतिष्ठा में पाँचों पीर पधारे। रात्रि जागरण हुआ। अगले दिन अभिजीत मुहूर्त में सवा बारह बजे स्वयं रामदेव जी ने कलश की विधि पूर्वक स्थापना की। उन्होंने हरजी को 'पण्डित जी' की मान्यता प्रदान की। पण्डित का अर्थ है- जिसे संपूर्ण शास्त्रीय ज्ञान हो, आगम-निगम का अनुभव हो तथा पिण्ड (शरीर) की सूक्ष्म पहचान हो। रामदेव जी ने हरजी को पण्डिताई का भेख दिया। पाँचों पीरों ने हरजी को अपनी एक-एक निशानी प्रदान की। रामदेव जी ने वेण गेडियो (चुटिया), मल्लिनाथ जी ने चिमटा, पाबू जी ने कटारी, गोसाई जी ने छड़ी तथा हड़बू जी ने वेळ (अंगूठी) व घोटा (लाठी) देकर हरजी को कहा कि तुम हर रोज इनकी विधि पूर्वक पूजा करना हमारा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा। सभी गादीपतियों द्वारा इनकी पूजा करने की परम्परा चली आ रही है।''

पण्डित जी की ढाणी स्थित इस मन्दिर के सामने हरजी की प्रोल व राम-रसोड़ा है। हरजी भाटी के इस ठिकाणे में स्थित सभी निर्माण कार्य उन्हीं के हाथों करवाए गए हैं। रामदेव जी-हरजी मिलन के स्थान बैठवासिया भाखर पर रामदेव जी का एक भव्य मन्दिर बना हुआ है तथा तालाब पर संवत् 1762 कार्तिक सुदी तृतीया सोमवार को हरजी द्वारा मन्दिर बनवाया गया तथा वर्तमान में वहाँ सुन्दर प्रोल का भी निर्माण करवाया गया है। इन मन्दिरों व पण्डित जी की ढाणी के बीच रावली ढाणी स्थित है जहाँ उदावत राठौड़ों के यहाँ मेजर शैतानसिंह जी का ननिहाल व लेखक का ससुराल है। यह क्षेत्र हरजी भाटी की पावन तपोभूमि है। यहाँ अनेक पूजा स्थल व किंवदंतियाँ आज भी उनके व रामदेव जी के दिव्य प्रेम व मिलन की गवाही दे रहे हैं।

आत्मबोध के बाद हरजी दिन-रात रामदेव जी की भक्ति में लीन रहने लगे। उन्होंने अनेक वाणियों की रचना की। वे भक्त कवि के रूप में लोकप्रिय होने लगे। वे घूम-घूमकर रामदेव जी की लीलाओं का बखान करते थे। मेघवाल जाति के रिखिये बाबा रामदेव जी की वाणियाँ गाकर सुनाते थे।

संवत् 1762 के माघ माह में हरजी जोधपुर की मसूरिया पहाड़ी पर स्थित बाबा रामदेव जी के गुरु जी बालीनाथ जी की समाधि स्थल पर पधारे। उन्होंने रात्रि जागरण किया, जिसमें अनेक श्रद्धालु उपस्थित हुए। भक्ति रस में भाव विभोर श्रोताओं ने कपड़े के घोड़े के सामने

रखे आरती के थाल में चाँदी के सैंकड़ों सिक्के चढाए। इस जागरण की सर्वत्र चर्चा होने पर हाकिम हजारीमल ने उन्हें ढोंगी करार दे जोधपुर महाराजा विजयसिंह जी से शिकायत की। महाराजा ने हरजी को कैद करवा लिया तथा कपड़े के घोड़े के सामने दाल व रिजका डलवा कर उनका तिरस्कार किया। हरजी ने कैद में रामदेव जी के नए-नए पद बनाकर करुण पुकार की -

बापजी ओ राजा बीजैसिंध परचौ मांगे,
परचो नहीं है पिण्डता रै पास।
नव मण रिजको हैंवर आगे राळियो,
दस मण दाणो नांख पांवरौ दियौ चढ़ाव।।

रात्रि का अन्तिम प्रहर आ गया, पर उनकी पुकार का कोई असर जान नहीं पड़ा। हरजी गाते रहे -

पीरजी अरज करूं ऊंडी ओरियां, ताळा सजड़ जड़ेवा।
विड़द लाजेला पीरां रावळौ, ताता तेल तळाणा।।

भक्त की करुण पुकार सुनकर बाबा रामदेव जी ने अपने अस्तित्व का आभास करवाकर हरजी को आश्वस्त किया -

च्यार जुगां री चाकरी, भव इण में पावौ।
जड़िया ताळा झड़ पड़ै, हरजी बाहर आवौ।।

उसी क्षण कपड़े के घोड़े ने भयानक हींस की जिससे पूरा मेहरानगढ़ कम्पायमान हो गया -

पीरजी हेंवर हींस करी ऊंडी ओरियां, गढ़ जोधाणौ दीयौ धुजाय।
राजा बीजैसिंघ पांये लागै, हरजी भाटी थांरी कळा संभाय।।

इस प्रकार संवत् 1762 के माघ माह के शुक्ल पक्ष की सप्तमी व शुक्रवार को जोधपुर के महाराजा विजयसिंह जी को परचा मिलने पर वे हरजी के पैरों में गिर पड़े व क्षमा याचना की। उन्होंने बैठवासिया की जागीर देनी चाही परन्तु पण्डित हरजी भाटी ने मना कर दिया। तब महाराजा ने उन्हें पण्डित जी की ढाणी का पट्टा ताम्बा-पत्र कर नजर किया। प्रतिवर्ष भाद्रपद व माघ माह की शुक्ल पक्ष की एकादशी को यहाँ बाबाजी के मेले भरते हैं।

भक्तगण अपने घर में 'रामदेव जी रो ब्यावलो' बुलवाते हैं। इसमें रात्रि काल में सत्संग का आयोजन होता है। पूजा पाठ के अनुसार रामदेव जी की शादी की विधि गायी जाती है तथा साथ-साथ उसका अर्थ भी बताया जाता है। लोग अपनी मन्नत पूर्ण होने पर ऐसे आयोजन करवाते हैं। ऐसे ब्यावले की मान्यता केवल हरजी या उनके गादीपतियों को ही है। हरजी की समाधि पर साल में दो बार रामदेव जी के ब्यावले का आयोजन होता है।

रामदेव भक्त हरजी ने 81 वर्ष तक माला फेरी तथा 103 साल की दीर्घायु के बाद संवत् 1838 की कार्तिक सुदी पूर्णिमा को तीर्थराज पुष्कर में उनका स्वर्गवास हुआ। मार्गशीर्ष सुदी तीज को उनकी समाधि पण्डित जी की ढाणी स्थित रामदेव जी के मन्दिर के पास बनाई गई। उनके बाद के सात दिवंगत गादीपतियों की समाधियाँ भी वहीं पर है। बाबा रामदेव जी व डाली बाई की प्रतीकात्मक समाधियाँ भी मन्दिर के सामने स्थित है। श्री श्री 1008 श्री पण्डित जी महाराज श्री हरजी भाटी के बाद संवत् 1838 में परम पूज्य पण्डित श्री स्वरूपदासजी महाराज गादी पर विराजमान हुए। तत्पश्चात् इस गादी पर संवत् 1850 में खींयादास जी, 1930 में पीरदास जी, 1954 में बगतावर दास जी, 1980 में रावतदास जी, 1990 में भूरदास जी, 2026 में जीयादास जी विराजमान हुए। संवत् 2062 में दिनांक दो मई सन् 2005 को रूपदास जी इस गादी पर विराजमान हुए। वर्तमान में श्री रूपदास जी महाराज नौंवे गादीपति के रूप में विराजमान है।

धन्य है रामदेव भक्त हरजी भाटी।

*

महान् कार्य शक्ति मात्र से नहीं, वरन सतत् प्रयत्न से तथा अध्यवसाय से होते हैं। जो व्यक्ति तीन घंटा प्रतिदिन उत्साह पूर्वक चलेगा, वह सात वर्षों में ही विश्व की परिधि की दूरी तय कर लेगा।

– उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

सुख और स्वास्थ्य क्या धन में हैं

– रामचरण महेन्द्र

बहुतसे व्यक्तियों को यह भ्रम है कि स्वास्थ्य, शक्ति, सुख एवं आनन्द के लिये हमें धन चाहिए, किन्तु उन्हें याद रखना चाहिए कि इसका वास्तव में हमारे मन से अधिक सम्बन्ध है। यदि हमारे विचारों, हमारी अभिलाषाओं और हमारे अन्त:करण में इनकी प्राप्ति के लिये दृढ निश्चय है तो इनके प्राप्त करने में धन की कमी हमारे लिये बाधक नहीं हो सकती। जो गरीब हैं और स्वास्थ्य तथा सुख का आनन्द लूटना चाहते हैं, उनको अपनी किसी भी अवस्था में हतोत्साहित नहीं होना चाहिए। स्वास्थ्य और सुख वह दैवी तत्त्व हैं जो संसार के विषम और कलुषित वातावरण से बहुत ऊँचे हैं और प्रत्येक जीवन में हम सब इनका आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

रुपये से सुन्दर स्वादिष्ट पकवान, मिठाई, बढिया भोजन खरीदा जा सकता है पर 'भूख' नहीं। भूख ढेर-के-ढेर रुपए देने पर भी बाजार में नहीं मिलेगी। रुपये से शक्तिवर्धक अनेक पदार्थ, एक से एक चटकीले मानकी दवाइयाँ मिलेंगी, पर 'शक्ति' नहीं। शक्ति के लिये तो परिश्रम का धन खर्च करना होगा। धन से कोई ऐश्वर्यशाली बन सकते हैं पर सच्चा आनन्द और 'शान्ति' कदापि न मिल सकेगी। रुपये से चश्मा मिलेगा पर 'दृष्टि' नहीं; कोमल शय्या मिलेगी पर 'निद्रा' नहीं; निस्तब्धता मिलेगी, पर 'हार्दिक संतोष' नहीं; अलंकार मिल सकेंगे, पर 'सौंदर्य' नहीं; विद्या मिलेगी, पर 'विवेक' नहीं; नौकर मिल सकते हैं पर 'सच्ची सेवा' नहीं; संगी-साथी अनेक इकट्ठे हो जायेंगे, पर 'सच्चे मित्र' नहीं; ठकुर सुहाती बातें खूब मिलेंगी, पर 'प्रेम' नहीं। संसार की उत्तम वस्तुएँ प्राय: बिना रुपये-पैसे के ही प्राप्त हुआ करती हैं। दुनिया में कोई ऐसा माप नहीं कि जिससे आनन्द, स्वास्थ्य, विवेक, प्रेम, निद्रा, शान्ति और शक्ति इत्यादि दैवी तत्त्वों का मूल्य आँका जा सके।

जिनको स्वास्थ्य और सुख की आवश्यकता है, उन्हें यह जानना चाहिए कि इनकी प्राप्ति के लिये हमें विशेष रूप से इन पदार्थों की आवश्यकता है- 1. सादा भोजन, 2. स्वच्छ वायु और पर्याप्त प्रकाश, 3. प्रसन्नता, 4. सदाचार, 5. व्यायाम।

भोजन के पदार्थ ताजे और निर्दोष होने चाहिए। उनके बनाने में पूर्ण रुचि और स्नेह का प्रयोग करना चाहिए। भोजन उपयोगी होना मिर्च-मसालों पर उतना निर्भर नहीं, जितना बनाने और तैयार करने पर निर्भर है। यदि विधिपूर्वक बनाया जाए तो भोजन उत्तम बनता है और पेट भर खाया जा सकता है। शाकभाजी, हरी तरकारियाँ हमारे स्वास्थ्य को घी-मक्खन से कहीं अधिक लाभ पहुँचाती हैं। धनी लोग स्वादिष्ट होने के कारण इतना खा जाते हैं कि उनकी पाचन-शक्ति ही खराब हो जाती है। अधिक भोजन रोगों को बढाने वाला, आयु को घटाने वाला, नरक पहुँचाने वाला और निन्दित कार्य कराने वाला है। गरीब व्यक्ति साधारणत: कम खायेगा, धीरे-धीरे खायेगा, जिससे उसकी प्राणशक्ति बढेगी। सच बात तो यह है-

आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्व ग्रन्थीनां विप्र मोक्षः।

(छान्दोग्य 7/26/2)

अर्थात् आहार की शुद्धि से सत्त्व की शुद्धि होती है, सत्त्वशुद्धि से बुद्धि निर्मल और निश्चयात्मिका बन जाती है, फिर पवित्र तथा निश्चयात्मिका बुद्धि से मुक्ति भी सुलभता से प्राप्त होती है। सुख और स्वास्थ्य के लिये नित्य नियमित समय पर खूब चबा-चबाकर शान्तिपूर्वक सात्विक अल्पाहार किया करें तो बिना रुपये के भी शक्ति मिलेगी।

हमारे जीवन में दूसरी आवश्यक वस्तुएँ हैं-स्वच्छ वायु और पर्याप्त प्रकाश। गंदी वायु से बीमारियों के कीटाणु हमारे शरीर में प्रवेश कर हमारे स्वास्थ्य को बिगाड़ डालते हैं। शहरों में प्राय: नब्बे प्रतिशत व्यक्ति ऐसे अन्धेरे घरों में रहते हैं, जहाँ न साफ हवा आती है न रोशनी। आरोग्य, बल तथा उत्तम पाचन-शक्ति चाहने वाले मनुष्यों को घर में ताजी

तथा शुद्ध हवा, जितनी ज्यादा हो सके, आने देनी चाहिए, जहाँ तक हो सके जंगल की खुली हवा में समय बिताना चाहिए। अपने सोने तथा बैठने के कमरे में हवा को प्रवेश करने की ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिए कि दूषित हवा में सांस न लेना पड़े। प्रकृति ने मनुष्य को हवा का प्राणी बनाया है, न कि घर में बंधा हुआ दिनों को धक्के देने वाला जानवर। याद रहे जिस घर में सूर्य का प्रकाश और धूप नहीं पहुँचती, वहीं डाक्टर और वैद्यराज आया करते हैं। धूप की किरणें लाखों डाक्टरों से अधिक उपयोगी हैं, गरीब लोग भी इन्हें जितना चाहे ले सकते हैं। मनुष्य को इस बात का गर्व होना चाहिए कि उसका घर हवादार स्वास्थ्यवर्द्धक है और उसमें पर्याप्त प्रकाश आता है।

तीसरी बात सदा शान्त और प्रसन्न रहना है। संसार वर्तमान युग में जितना अशान्त हो गया है, उतना कभी नहीं रहा। संसार के झंझटों में हम इतने उलझ गये हैं कि हमें पर्याप्त रूप से आराम नहीं मिलता और तरह-तरह की चिन्ताएँ खाये डालती हैं। हम सभी हंसी-खुशी से रहना चाहते हैं पर ऐसे बहुत कम व्यक्ति हैं, जो वस्तुत: प्रफुल्लित रह पाते हैं। प्रसन्नता प्रत्यक्ष और शीघ्रतम लाभ है। वह अन्य सिक्कों की तरह केवल बैंक का सिक्का नहीं वरन् प्रत्यक्ष सिक्का है। धन प्रसन्नता का सबसे छोटा साधन है और स्वास्थ्य सबसे अधिक; गरीब रहकर भी कोई हँसत-हँसते अपना मार्ग तय कर सकते हैं।

चौथी बात है सदाचार। जिसके जीवन में दुराचार है उसके शरीर में स्वास्थ्य और जीवन में सुख का दर्शन नहीं हो सकता। यदि ईश्वर और शासक का भय न हो तो भी पाप नहीं करना चाहिए। यही सब सदाचरण है। जो मनुष्य अन्त:करण की शिक्षा पर सदैव ध्यान देते हैं, उसके विरुद्ध कोई कार्य नहीं करते, उनकी अन्तरात्मा बड़ी प्रबल हो जाती है। वह उनके लिये पथ-प्रदर्शक का काम करती है और उन्हें पददलित होने से बचाती है। मस्तिष्क का विकास हमें एक पग भी ईश्वर की ओर नहीं बढा सकता, जब तक उसमें संयम, इन्द्रिय-दमन और अन्त:करण की पुकार न हो। अन्तरात्मा को जाग्रत करने के लिये रुपये-पैसे की आवश्यकता नहीं है।

व्यायाम हमको सदा नवजीवन, शक्ति और सुख प्रदान करता है। जिस प्रकार शरीर को खाने-पीने की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार व्यायाम की भी आवश्यकता होती है। हमारे पास करोड़ों का धन हो, संसार हमारी प्रतिष्ठा करता हो, परन्तु यदि हम रोगी रहते हैं तो यह सब कुछ विष के समान है। सुख धन से बहुत कम प्राप्त होता है, परन्तु व्यायाम से सबसे अधिक। व्यायाम से दीर्घायु होती है, शरीर हल्का रहता है, पाचन-शक्ति ठीक रहती है और फेफड़े मजबूत बनते हैं। व्यायाम से मन निरोग, निर्विकार और पुष्ट बनता है और संपूर्ण नीच इन्द्रियाँ फीकी पड़ जाती हैं। आत्मोद्धार चाहने वालों को, ब्रह्मचर्य पूर्वक रहकर नित्य नियमित रूप से प्रात: या सायंकाल शक्ति के अनुसार अवश्य व्यायाम करना चाहिए।

ऊपर जिन तत्त्वों का उल्लेख किया गया है, उनके लिये धन की आवश्यकता नहीं। इनका साधन और अभ्यास हमारे मनोभावों और इच्छाशक्ति की दृढता पर निर्भर है। इनमें से कोई बात ऐसी नहीं, जिसके लिये हम अपने जीवन की निर्धनता के कारण असमर्थ हों। स्वास्थ्य और शक्ति प्राप्त करना केवल अपने ऊपर निर्भर है। जो स्वास्थ्य चाहते हैं, सुख की कामना करते हैं, उनको चाहिए कि रुपये-पैसे का पीछा करना छोड़ उन साधनों को जानने का प्रयत्न करें जो हमें ऊँचा उठाने वाले हैं। इसके लिये उन्हें प्राचीन ऋषियों के बनाये हुए सत्य का अवलम्बन करना चाहिए। प्रकृति माता की शरण में जाना चाहिए। रात-दिन रुपया-रुपया चिल्लाने के स्थान पर जीवन का प्रकृततत्त्व क्या है, वह किन बातों से उन्नत, विकसित और प्रौढ़ बनता है, यह जानना चाहिए।

मेरा विश्वास है कि गरीबी, निर्धनता, ऊँचाई, गहराई कोई भी हमें ईश्वर-प्रदत्त स्वास्थ्य सुख से दूर नहीं रख सकती। अनन्त जीवन से हमारी एकता है। हम और परमपिता एक हैं। हम आकस्मिकता और भाग्य के गुलाम नहीं हैं, बल्कि उसका संचालन करने वाले हैं। हम उसके स्वामी हैं। अत: हम हमारी आत्मा के सत्य को पहचाने, वह सत्य हमें धन के क्षुद्रत्व से मुक्त कर देगा।

मेवाड़ अंचल (सम्भाग) अन्तर्गत 'राजसमन्द'-एक दृष्टि में

- स्वामी गोपालआनन्द बाबा

मेवाड़ धर्मभूमि, कर्मभूमि, संस्कृतिभूमि, प्रकृतिभूमि, शौर्यभूमि, गौरवशाली ऐतिहासिक भूमि के लिए जग विख्यात है। यह प्राचीन राजपूताना व वर्तमान राजस्थान का महत्त्वपूर्ण अंग है। मेवाड़ एक राजतंत्रीय राज्य (रियासत-एस्टेट-इस्टेट-Estate) था, जिसकी राजधानी ''चित्तौड़ (चित्रांगद गढ-चित्तौड़गढ़)'' व ''उदयपुर'' रही। मेवाड़ अन्तर्गत का जनपद 'राजसमन्द' वर्तमान लोकतांत्रिक राज्य-प्रदेश (स्टेट-State) राजस्थान का प्रकृति व संस्कृति का संगम लिए हुए एक जिला है। इस जनपद का मुख्यालय ''राजसमन्द''-सुरम्य पहाड़ियों के बीच विराट (विशालकाय) झील और उसके आसपास विराट व भव्य तथा बहुत सुन्दर स्थापत्य की उपस्थिति-यह दृश्य है, राजस्थान के राजसमन्द का।

मेवाड़ भगवान महादेव शिव-''एकलिङ्ग'' को समर्पित रियासत-राज्य रहा, जो ही वास्तव में मेवाड़ के शासक रहे, वहाँ के शासक उन्हीं के नाम पर शासन-प्रशासन चलाते थे, अत: वे महारावल, रावल और पश्चात् महाराणा राणा कहलाते थे। राजसमन्द की स्थापना 17वीं शताब्दी ई. के उत्तरार्द्ध में महाराणा राजसिंह द्वारा की गई थी। फरवरी 1676 (ई.) में महाराणा राजसिंह द्वारा आयोजित प्रतिष्ठा समारोह में गोमती के जल प्रवाह को रोकने के लिये बनाई गई झील का नाम राजसमन्द, पहाड़ पर बने महल का नाम राजमन्दिर और नगर का नाम राजनगर रखा गया, जिसे अब राजसमन्द कहा जाता है। राजस्थान की राजधानी जयपुर से 350 किलोमीटर दूर दिल्ली-मुम्बई राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित है राजसमन्द। यहाँ और इस क्षेत्र में वह सब कुछ देखने को मिलता है, जिसे देखकर बरबस मुख से निकल पड़ता है-'वाह'। नगर नेशनल हाइवे (राष्ट्रीय उच्च मार्ग) संख्या 58 एवं 758 पर स्थित है। सड़क मार्ग द्वारा राजस्थान के और देश के भी प्रमुख नगरों-महानगरों से जुड़ा हुआ है। जयपुर, उदयपुर, कोटा, भीलवाड़ा, अजमेर, ब्यावर, अहमदाबाद (कर्णावती), इन्दौर, नई दिल्ली जैसे नगरों व महानगरों से सीधी बस सेवा उपलब्ध होती है। राजसमन्द में रेलवे स्टेशन नहीं है। निकटतम रेलवे स्टेशन उदयपुर में है, जो यहाँ से 55 कि.मी. दूर है; ज्ञात हो कि उदयपुर से ही कटकर राजसमन्द जिला बना। उदयपुर रेलवे स्टेशन (जंक्शन) दिल्ली, मुम्बई, अहमदाबाद, जयपुर आदि से जुड़ा हुआ है। निकटतम हवाई अड्डा उदयपुर के डबोक में है, जो राजसमन्द से लगभग 70 कि.मी. दूर है।

इतिहासप्रेमियों के लिये तो राजस्थान के मेवाड़ अंचल की आन-बान-शान के प्रतीक हैं-कुम्भलगढ़ दुर्ग, देवगढ़ के महल और सरदारगढ़ का किला। कांकरोली में भगवान श्री द्वारिकाधीश, नाथद्वारा में श्रीनाथजी तथा गढ़बोर में श्रीचारभुजानाथ मंदिर के दर्शन कर अलग ही अनुभूति होती है। यहाँ राजस्थान के वीर योद्धा, भारत की स्वतंत्रता के पर्याय महाराणा प्रताप के शौर्य एवं बलिदान की कथा-गाथा-कहानी सुनाती हल्दीघाटी की मिट्टी को छूकर लोग रोमांचित हो उठते हैं और इतिहास के पन्नों में खो जाते हैं। ऊँचे पहाड़ की चोटी पर धीमी गति से चलनेवाली मीटर गेज की ट्रेन से खामलीघट से गोरमघाट तक का सुहाना सफर सर्वदा स्मृति में रहता है।

राजसमन्द जिला स्वतंत्रता पूर्व मेवाड़ राज्य का और बाद में उदयपुर जिले का अंग रहा; राजस्थान सरकार ने 31 मार्च, 1991 को एक अधिसूचना जारी कर राजसमन्द जिले के गठन की घोषणा की तथा 10 अप्रेल, 1991 को राजसमन्द नगर को जिला का मुख्यालय बना दिया। राजसमन्द की जनसंख्या दो उपनगरों में विभाजित है- पूर्वी भाग-'कांकरोली' और पश्चिमी भाग-'राजनगर'। यहाँ अवस्थित राजसमन्द झील 7 कि.मी. लम्बी, 3 कि.मी. चौड़ी और 55 फीट गहरी है। जिस राजसमन्द झील के नाम पर इस नगर का नाम रखा गया है, वह अत्यन्त सुन्दर

है। मेवाड़ के महाराणा राजसिंह द्वारा सन् 1669 से 1676 ई. के मध्य बनवाई गई यह झील मेवाड़ की विशालकाय झीलों में से एक है। गोमती नदी को दो पहाड़ियों के बीच में बाँध से रोककर झील का निर्माण किया गया था। कांकरोली व राजनगर इसी झील के किनारे स्थित हैं। यहाँ का प्रमुख आकर्षण है झील के किनारे की अनूठी छतरियाँ और पाल पर बनी नौ चौकी। यहाँ संगमरमर के तीन मण्डपों की छतों, स्तम्भों तथा तोरणद्वारों पर की गई नक्काशी एवं मूर्तिकला अद्‌भुत है। तीनों मण्डपों में प्रत्येक में ''नौ'' का कोण है और प्रत्येक छतरी की ऊँचाई नौ फीट है। झील की सीढ़ियों को भी हर ओर से गिनने पर योग नौ ही होता है। इस पाल पर नौ चबूतरे (जिन्हें चौकी कहते हैं) होने के कारण इसका नाम ''नौ चौकी'' हो गया। महाराणा राजसिंह इस झील के लिये मेवाड़ के इतिहास का भी संग्रह करवाए और तैलंगभट्ट मधुसूदन के पुत्र रणछोड़ भट्ट ने 'राजप्रशस्ति' नामक महाकाव्य की रचना की, उसे लिखा, जो यहाँ पाषाण की शिलाओं पर उत्कीर्ण किया गया।

राजसमन्द के आर्थिक व भौतिक विकास में संगमरमर पत्थर के खनन-व्यवसाय का विशेष योगदान है। यहाँ संगमरमर की अनेक खदानें (खान) हैं, जिनसे मार्बल प्रस्तर आते हैं और यहाँ से देश-विदेश में भेजे जाते हैं। राजसमन्द से नाथद्वारा मार्ग तथा गोमती मार्ग पर दोनों ओर संगमरमर पत्थरों का भण्डारण देखने को मिलता है। अत्यधिक गुणवत्ता वाले होने के कारण ही यहाँ के ''मार्बल'' की अत्यन्त माँग है। अत: संगमरमर से भी राजसमन्द की पहचान है।

त्याग और बलिदान, शौर्य और साहस जैसे आदर्श स्थापित कर स्वाभिमानी मूल्यों को पुष्ट करने वाली प्रेरणा का नाम है, 'राजसमन्द'; यह मेवाड़ अंचल के नाभिकेन्द्र में स्थित है। वीर शिरोमणि, हिन्दुआ सूर्य महाराणा प्रताप की इस जन्मभूमि, कर्मभूमि, रंगभूमि और विजयभूमि की जितनी अच्छाइयाँ गिनाएँ, जितनी प्रशंसा की जाए, उतनी कम है। यदि आन, बान, शान की धरती राजस्थान है तो भक्ति, शक्ति और त्याग राजसमन्द का मान है। नाथद्वारा, भगवान श्रीनाथजी (भगवान श्रीकृष्ण) का द्वार है। वैष्णव मत धर्म के वल्लभ सम्प्रदाय का यह सुप्रसिद्ध तीर्थस्थल राजसमन्द से 16 किलोमीटर दूर दक्षिण में उदयपुर मार्ग पर स्थित है। नाथद्वारा का अर्थ ही है भगवान का द्वार। नाथद्वारा मन्दिर को 'श्रीनाथजी की हवेली' भी कहा जाता है। मन्दिर में श्रीनाथजी (श्रीकृष्ण) की 12वीं शताब्दी (ई.) की निर्मित भव्य एवं चित्ताकर्षक मूर्ति विराजमान है। श्रीनाथजी के भक्तों में एक मान्यता सुख्यात है-'देने वाले श्रीनाथजी और पाने वाले श्रीनाथजी' अर्थात् जो कुछ भी प्राप्त हो रहा है या आदान-प्रदान हो रहा है उसका सारा श्रेय भगवान श्रीनाथजी को ही जाता है। ध्यातव्य हो कि नाथद्वारा में संगीत और चित्रकला को भी बहुत प्रश्रय मिला। यह मन्दिर हवेली संगीत का केन्द्र रहा। श्रीनाथजी के शृंगार में पिछवाइयों का प्रमुख स्थान है। मन्दिर में होने वाले हर उत्सव और त्योहार पर अलग-अलग तरह की पिछवाई बनाई जाती है। यहाँ श्रीनाथजी के दर्शन प्रतिदिन आठ बार यानी आठ समय होते हैं-मंगला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या आरती और शयन। इस मन्दिर में सोने-चाँदी की घट्टी, घी के कुण्ड के अतिरिक्त और भी कई दर्शनीय स्थान हैं। इसके अतिरिक्त-नाथद्वारा में लालबाग, महाराणा के महल, वृन्दावन बाग, गणगोरघाट महल, गणेश टेकरी एवं नाथद्वारा गोशाला भी अत्यन्त लोकप्रिय हैं; यात्री-पर्यटक इन्हें देखना नहीं भूलते। नाथद्वारा के गणेश टेकरी (पहाड़ी-डूंगरी-द्रि) पर 351 फीट ऊँची भगवान महादेव शिव की मानवी प्रतिमा (मूर्ति) भी दर्शनीय है, जो विश्व की सबसे ऊँची प्रतिमा है। इसे 20 कि.मी. की दूरी से भी देखा जा सकता है। 250 कि.मी. प्रतिघण्टा की रफ्तार से चलने वाले तूफान में भी यह सुरक्षित रह सकती है। इस शिव प्रतिमा के परिसर में दर्शकों के मनोरंजन के साथ-साथ कई तरह की अन्य सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

नाथद्वारा आने वाले लोग अपने साथ भगवान के प्रसाद (प्रसादी-प्रसाधी) के साथ श्रीनाथजी का चित्र ले

जाना नहीं भूलते। ये चित्र 300 रुपये से लेकर लाखों रुपये तक भी हो सकते हैं। हाँ, अधिक मूल्य के चित्रों में हीरे-मोती भी लगे (जड़े) होते हैं। इसके अतिरिक्त, इत्र, कण्ठीमाला, मीनाकारी, आभूषण, भगवान के चित्र और पारम्परिक वस्त्रों की भी बहुत दुकानें सजती हैं। प्रमुख पेठ-बाजार-दिल्ली बाजार और मुख्य (मेन) बाजार हैं, जहाँ अत्यधिक भीड़ रहती है। राजसमन्द एवं इस क्षेत्र में वर्ष भर कोई न कोई आयोजन होता ही रहता है, अत: यात्रियों व पर्यटकों का आना-जाना लगा रहता है। कांकरोली एवं नाथद्वारा में प्रतिवर्ष चैत्र माह (अप्रैल) में गणगौर का मेला सजता-लगता है। हल्दीघाटी व कुम्भलगढ़ में 'प्रताप जयन्ती' के अवसर पर भव्य मेला सजता है। कुंवारिया ग्राम में तथा देवगढ़ में सजने वाले 'पशुमेले' भी प्रसिद्ध हैं। नाथद्वारा एवं कांकरोली में जन्माष्टमी (भाद्रपद कृष्ण/बदी अष्टमी) पर अनूठे उत्सव का आयोजन किया जाता है। दीपावली के दूसरे दिन मनाया जाने वाला यहाँ का अन्नकूट उत्सव भी अत्यन्त सुख्यात है। गढ़बोर चारभुजा में देवझूलनी एकादशी पर भव्य मेला सजता है। कुम्भलगढ़ दुर्ग पर अगहन (अग्रहायन) माह (दिसम्बर) में आयोजित होने वाला त्योहार भी खूब लोकप्रिय है। इस तीन दिवसीय उत्सव (फेस्टिवल) में देश के जाने-माने शास्त्रीय नृत्य कलाकार भाग लेते हैं। यहाँ की चित्रकला भी अनूठी है। नाथद्वारा के श्रीनाथजी मन्दिर में प्रतिमा के पीछे सजाई जाने वाली पिछवाई पेंटिंग देखकर दर्शक अचम्भित रह जाते हैं। पिछवाई का अर्थ है 'देव-स्वरूप के पृष्ठ भाग में टांगा जानेवाला चित्रित पर्दा'। कांकरोली के श्री द्वारिकाधीश मन्दिर में बनाए जाने वाले जलचित्र अपनी तरह की अद्‌भुत चित्रकारी के उदाहरण हैं।

यहाँ ऐतिहासिक रणस्थली वीरता की गवाह 'हल्दीघाटी' का दर्शन स्फूर्तिदायक है। यह सुप्रसिद्ध मुगल अकबर व महाराणा प्रताप के बीच हुए युद्ध का मूक गवाह है तथा 'चेतक' के बलिदान का भी स्थल है। हल्दीघाटी राजसमन्द से 15 कि.मी. दूर खमनोर की ओर जाने वाली सड़क पर है। महाराणा प्रताप के स्वामीभक्त घोड़े 'चेतक' ने अपने स्वामी के प्राणों की रक्षा करते हुए यहीं अपने प्राणों की आहुति दी थी; चेतक की स्मृति में यहाँ 'चेतक-स्मारक' निर्मित है। यहाँ की मिट्टी का रंग ''हल्दी'' की तरह होने के कारण इस घाटी का नाम 'हल्दीघाटी' है। हल्दीघाटी दर्रे के नीचे बादशाही बाग और रक्ततलाई है, जिसके बारे में कहा जाता है कि ''युद्ध'' के समय यह (तलाई) रक्त से भर गई थी। यहाँ प्रत्येक वर्ष प्रताप जयन्ती पर मेला सजता है।

सुप्रसिद्ध श्रीचारभुजाजी मंदिर राजसमन्द से 42 कि.मी. दूर है। वैष्णवमत धर्म का यह तीर्थ स्थल गोमती चौराहे से जोधपुर जाने वाले सड़क मार्ग पर गढ़बोर ग्राम के मध्य स्थित है, जो श्रीनाथजी मन्दिर की तरह ही विख्यात है। यहाँ भगवान श्रीकृष्ण की चतुर्भुज प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसलिए इसे चारभुजाजी का मन्दिर कहते हैं। मन्दिर में रंगीन काँच का मनोहारी काम दर्शनीय है। अनेक स्थानों पर स्वर्णपत्र जड़े हुए हैं। प्रत्येक वर्ष देवझूलनी एकादशी पर यहाँ विशाल मेला सजता है।

राजसमन्द से लगभग 60 कि.मी. दूर है महाराणा प्रताप की जन्मस्थली-''कुम्भलगढ़'', जो अरावली पर्वत शृंखला की ऊँची चोटी पर राजमुकुट के समान दैदीप्यमान है व दूर से ही पर्यटकों को आकर्षित करता है। मेवाड़ के महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) ने इसका निर्माण सन् 1448 ई. में किया था। इसी कारण इसे कुम्भलगढ़ नाम दिया गया। मुगल अकबर को अनेकों बार परास्त करने वाले महाराणा प्रताप का जन्म इसी दुर्ग में हुआ था। इस दुर्ग के तीन प्रमुख प्रवेश द्वार हैं- पहरेदार पोल, हल्लापोल और गणेशपोल। यहाँ से गुजरने के बाद 'झाली रानी' का महल है, जिसका नाम महाराणा उदयसिंह की रानी झाली के नाम पर रखा गया। थोड़ा आगे 'नारछाती तलैया', 'तोपखाना' और 'दुर्गामन्दिर' हैं। दुर्ग पर बना 'नीलकण्ठ महादेव मन्दिर' स्थापत्य की दृष्टि से उत्कृष्ट है। यहाँ 'हनुमान मन्दिर' और 'जैन मन्दिर' भी हैं। पहाड़ी मार्ग के बीच रेलयात्रा भी आनन्ददायक है, जो शिमला, दार्जिलिंग,

ऊटी और माथेरान की टॉय ट्रेन-यात्रा की स्मृति ताजा कर देती है। खामली घाट से गोरमघाट का हसीन सफर 'यादगार' बन जाता है। मावली से मारवाड़ जंक्शन मीटर गेज रेलवे लाइन पर राजसमन्द से देवगढ़ के निकट यह रेलमार्ग है। वर्षाऋतु में इसका रोमांच चरम पर होता है। वास्तव में यह पहाड़ी मार्ग अत्यधिक सुन्दर है। वर्षाकाल में हरी-भरी पहाड़ियों के बीच से, यू-आकार की पुलिया एवं टनल से निकलते हुए रेल जब धीमी गति से गन्तव्य की ओर बढ़ती है तब लगता है, तब स्वर्गानुभूति होती है। गोरमघाट में प्राकृतिक जलप्रपात तथा एक मन्दिर भी दर्शनीय है। टॉडगढ़ अभयारण्य क्षेत्र में होने के कारण यहाँ यात्रियों-पर्यटकों को वनी जीव-जन्तु भी दिखलाई पड़ जाते हैं। (ए जू इन रिभर्स का भान होता है।)

नाथद्वारा में भगवान श्रीनाथजी को जो प्रसाद चढ़ता है, वह सभी को उपलब्ध होता है। उक्त प्रसाद इस मन्दिर के 'प्रसाद काउण्टर' पर रसीद कटवाकर भी प्राप्त होता है अथवा 'परसादियों की गली' में स्थित प्रसाद की दुकानों से भी सशुल्क प्राप्त होता है। यहाँ के प्रसाद (प्रसादी-प्रसाधी) की विशेषता यह है कि उसमें शुद्ध देशी घी तथा सूखे मेवे की बहुलता होती है। श्रीनाथजी के 'सागर' प्रसाद की सुगन्ध और स्वाद तो अद्‌भुत व अद्वितीय होता है। लड्डू ठोर, मूंगथाल, मदनमोहन, खाजा और राबड़ी भी यहाँ के मुख्य प्रसाद में सम्मिलित रहते हैं। प्रसाद के रूप में एक पूरी 'पत्तल' होती है, जिसमें थोड़ी-थोड़ी यह सारी सामग्री रहती है। इसी तरह कांकरोली स्थित भगवान श्री द्वारिकाधीश के प्रसाद के रूप में भी ठाकुरजी की थाली मिलती है, जिसमें खोआ, दूध पुड़ी और मठरी जैसे व्यंजन सम्मिलित रहते हैं। वास्तव में मेवाड़ प्रान्त क्षत्रिय राजपुत्रों (राजपूतों) के क्षात्रधर्म, राजपूत संस्कृति, उनके द्वारा निर्मित छोटी-बड़ी व विशाल संरचनाएँ व झीलें तथा मन्दिरों आदि का जीता-जागता क्षेत्र है, जो देश-विदेश के पर्यटकों को बारम्बार आकर्षित करता है। जो भी वहाँ जाता है, एक बार पुनः जाने को लालायित रहता है।

✻

चरित्र-प्रकाश

- डॉ. श्याम बिहारी

है चरित्र वह गुण प्रबल, जो देता सुख शान्ति।
मानव का उत्थान कर, सदा बढाता कांति।।

जैसे हीरा काटता, विविध कठिन पाषाण।
त्यों चरित्र हर दोष हर, करता नित कल्याण।।

जिस नर का निज पर नहीं, चल पाता है जोर।
ऐसा दुर्बल चरित्रयुत, जग में नित कमजोर।।

विचलित होता है नहीं, नर का कभी चरित्र।
सुख-दुख में वह सर्वदा, परम हितैषी मित्र।।

वस्त्र, वर्ण, सुन्दर वदन, धन-दौलत बेकार।
यदि चरित्र उत्तम नहीं एवं शुद्ध विचार।।

सच्चरित्रता से सहज, होता सब उपलब्ध।
इसे प्रभावित कर नहीं, सके कभी प्रारब्ध।।

विचार-सरिता

(पञ्चपञ्चाशत् लहरी)

– विचारक

जीव स्वयं सत् है किन्तु स्वयं को जान नहीं सकता। सत्य को जानने के लिये गुरु की आवश्यकता होती है। श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से गुरु रूप में स्वयं श्रीकृष्ण ने जीवरूपी अर्जुन को समझाते हुए अठारह अध्यायों में 700 श्लोकों में जीव को अपने आपका परिचय कराया। भिन्न-भिन्न गीताओं में तथा वेद, वेदान्त व उपनिषदों में जो वर्णन है वह सब हमारे ही स्वरूप का वर्णन है। अपने आपको पा जाना ही जीवमात्र का लक्ष्य है पर वह माया की चकाचौंध में अपने आपसे बेखबर होकर रीता ही यहाँ से चल देता है। सब सुख व आनंद का खजाना हमारे भीतर होते हुए भी हम भीतर में टिक ही नहीं पाते हैं, इसलिए मन के गुलाम बनकर मनमाया की भूल-भुलैया में उलझकर अपने आप से बेखबर, दीन, हीन व गुलामी का जीवन जी रहे हैं।

कुछ पाने के लिये कुछ खोना पड़ता है। अतएव अपने आपको पाने के लिये हमें हमारी मान्यताओं को मिटाना होगा। हमारी जीवभावना की मान्यता ने ही तो हमें भटकाया है। देह के प्रति रागात्मक सम्बन्ध ने ही इस देह के सम्बन्धियों से परिचय करवाया और जैसे हमने देह को अपना-आप माना ऐसे ही इस देह के सम्बन्धियों को भी अपना मान लिया और उनसे रागात्मक भाव में जब कभी अभाव आता है तो हम दु:खी हो जाते हैं। इसलिए अपनी मान्यताओं को भुलाना पड़ेगा।

प्रत्येक जीव की एक ही अभिलाषा है कि मुझे मुक्ति मिल जाए, मेरा मोक्ष हो जाए। मोक्ष हम चाहते तो सभी हैं पर मोह से क्षय नहीं कर पाते हैं इसलिए बन्धन प्रतीत होता है। आत्मा कभी बद्ध होती ही नहीं उसको किसी भी प्रकार का बंधन है भी नहीं पर बंधन की मान्यता ने ही उसे बंधन का अहसास कराया है। निरबंधन में बंधन की भ्रान्ति ही मोक्ष की चाह पैदा करती है। यदि वह संसार के मोह माया से रचित पदार्थों में सुखबुद्धि न करके अपने आप में स्थित हो जाय तो वह मुक्त ही है। उदाहरणार्थ- बहेलिया जब तोते को पकड़ना चाहता है तो वह जंगल में वृक्ष पर एक लोहे की कड़ाही में आधा पानी भर देता है। किनारों पर लगे दो कड़ों में एक नलनी (भूंगली) सहित तार लगा देता है। जब तोते को प्यास लगती है तो वह पानी पीने हेतु उस नलनी पर बैठकर ज्यों ही झुक कर पानी पीना चाहता है तो तार पर लगी नलनी घूम जाती है और तोता उल्टा लटक जाता है। तोता सोचता है कि यदि मैंने इस नलनी को छोड़ दिया तो मैं इस अथाह पानी में डूबकर मर जाऊँगा। अत: वह उसे पकड़े रहता है। इतने में बहेलिया उसे पकड़ कर पिंजरे में डाल देता है। जहाँ वह जीवनभर पिंजरे की कैद में कैदी ही रहता है। ऐसे ही तोता रूपी जीव जिसे मायावी पदार्थों की प्यास लगी है और वह अविद्या रूपी तार जो कि देह रूपी नली में पिरोई हुई है उस देह रूपी नली पर जब यह जीव बैठकर इसका संग मान लेता है तो देह के धर्मों को ही अपना धर्म मानकर देह के मरण को अपना मरण मान लेता है और नाना योनियों में भटकता ही रहता है।

मोक्ष कोई वस्तु नहीं जो हम खरीद कर ले आवें या माँगकर ले आवें। मोक्ष कोई स्थान नहीं जहाँ जाने से हम मुक्त हो जाएँगे। मोक्ष कोई भोग भी नहीं है जिसे भोगने के बाद मोक्ष मिल सके। यह कोई रस भी नहीं है। जिसे पीकर हम मुक्त हो जाएंगे। हकीकत तो यह भी है कि मोक्ष की कोई सिद्धि भी नहीं है। इसकी कोई क्रिया भी नहीं है। मोक्ष न स्वर्ग में है न किसी लोक में है। मोक्ष का असली स्वरूप तो यह है कि विषयों में विरसता ही मोक्ष है। विषयों में किसी प्रकार का रस ही न रहे। हम शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध का उपयोग करते हुए भी उनमें सुख-बुद्धि न करने का नाम ही मोक्ष है। ज्ञानेन्द्रियों के विषयों का ज्ञान केवल ज्ञानेन्द्रियों तक ही रहे उनमें रसता का अभाव होना ही मोक्ष है। जिस शरीर को हम मैं

मान रहे हैं वह तो इन्द्रियों का गुलाम है तथा इन्द्रियाँ मन की गुलाम हैं और हम हो गए मन के गुलाम। इसलिए जब तक यह गुलामी नहीं छूटेगी तब तक हम शहंशाह होते हुए भी जैसे दुल्हा स्वयं ढोल बजाने वाले ढोली के आगे नाचने लग जाए और लोगों की नजरों में तमाशबीन बन जाए, ऐसी ही स्थिति हमारी हो रही है। हमारा स्वरूप सारे संसार का सम्राट है फिर भी विषयों के वशीभूत होकर पेट के खातिर रो रहा है। यही सबसे बड़ी गुलामी है।

हमने सद्‌ग्रन्थों का अध्ययन करके यह तो जान लिया कि मैं देह नहीं हूँ। मैं इन्द्रियाँ भी नहीं हूँ। मैं मन और बुद्धि भी नहीं हूँ। यह सब जानकारी हमारी बुद्धि तक है। क्योंकि यह सब जानते हुए भी हमारी रुचि विषयों में है। विषयों के आनंद में हम इतने अंधे हो गए हैं कि हमें अपने आपकी जानकारी नहीं है कि मैं कौन हूँ? मेरा कौन है? मेरी रिश्तेदारी किससे है? आदि प्रश्नों के उत्तरों को हमने अभी पूर्णत: जाना ही नहीं। ऐसे प्रश्नों के उत्तरों के लिये हमें अष्टावक्र जैसे गुरु की आवश्यकता रहेगी। एक ऐसा गुरु जो सीधा हमारे अहंकार पर चोट करता हो। आत्मीय ज्ञान के लिये जब तक अहंकार गलीभूत नहीं होगा तब तक हम तोते की रटन की भाँति किताबी ज्ञान की बातें करके अपने अहंकार को और ज्यादा पुष्टित करके बंधन में ही रहेंगे और कभी अपने को नित्य मुक्तावस्था की स्थिति में उतार ही नहीं पाएंगे।

अभी तो हमारी स्थिति ऐसी है कि हम विषयों के रस को पाकर आनंदित हो रहे हैं और उनके अभाव में दुखी हो रहे हैं। भीतर से हमारी स्थिति तो ऐसी बनी हुई है कि प्रचुर मात्रा में धन, दौलत, भोग सामग्री का संग्रह हो जाएगा तभी हम सुखी होवेंगे। उस आनन्द की झलक अभी हमने देखी ही नहीं कि जिसके पास तन ढकने को लंगोटी नहीं, रहने के मकान नहीं, खाने को पात्र नहीं, फिर भी आन्द के सागर में मस्ती से गोते लगा रहे हैं।

शरीर में रहते हुए शरीर से अलग रहने की कला जब तक किसी सद्‌गुरु की कृपा से हम नहीं सीख पाएंगे तब तक विषयों की गुलामी नहीं छूटेगी। भूख लगने पर शरीर को भोजन देना, प्यास लगने पर इसको पानी पिलाना, कपड़े आदि पहनाना हम इस प्रकार करें जैसे कोई आया किसी अन्य के पुत्र की यह सब सेवा करते हुए भी उसमें उसका ममत्व नहीं है अपितु एक कर्तव्य समझकर सब कर रही है। ऐसे ही इस पंचभौतिक शरीर की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति उस आया की तरह करनी है। इसको अपने से अलग समझ कर इसके कार्यों को साक्षीवत देखते रहें। यह कला यदि हमारे जीवन में उतर जाए तो हम निहाल हो जाएंगे। हमारा जीना भी सार्थक हो जाएगा। उस विरसता में जो रस है, वह विषयों में नहीं। अत: हमें शरीर नहीं, शरीरी बनना है। देह नहीं देही होने की अनुभूति पैदा करनी है।

हमारा स्वरूप चेतन है, यह शरीर जड़ है। शरीर में अंहबुद्धि करके हम अपने चेतन तत्व को भूलकर जड़ बनने की भूल कर रहे हैं। हमने जड़ को ही मैं मान लिया। यदि हम जो हैं उसे स्वीकार कर लें और जो हम नहीं हैं उसे नहीं मान लें तो आनंद ही आनंद है। हम जैसे हैं, ठीक वैसा मान लेना ही मोक्ष है। यही यथार्थ ज्ञान है। जो हम नहीं हैं उसको मैं मानने की भूल ही हमें गुलामी में रस प्रदान कर रही है और मोक्ष जैसी स्वतंत्रता का आनंद प्राप्त करने में बाधा पैदा कर रही है। जो मैं वास्तव में हूँ उसका ज्ञान ही गलत हो गया तो फिर मेरे का ज्ञान भी गलत हो जाएगा। मैं शरीर हूँ ऐसी मान्यता के कारण ही तो हम यह कह देते हैं कि यह आँख मेरी, यह नाक मेरी, ये हाथ मेरा, ये पाँव मेरे। ऐसे अन्य इस शरीर के सम्बन्धियों को भी मेरे मानकर हम और ज्यादा उलझ जाते हैं और फिर मेरा, तेरा करके हम जीवन नीरस बना लेते हैं और एक दिन प्रारब्ध का अन्तिम श्वास इस मेरे-पन को पराया-पन में परिवर्तित कर देता है। अन्तिम समय में इस मैं और मेरे की पोल भी निकल जाती है और सब कुछ पराया होने का अहसास भी हो जाता है पर उस स्थिति में हमारे पास समय ही नहीं बचता कि हम अपनी वास्तविकता से परिचित हो जाएँ।

(शेष पृष्ठ 30 पर)

जीवन की गीता के सूत्र

– स्व. सूरतसिंह कालवा

गीता हमारे जीवन का गीत बन जानी चाहिए। युद्ध के प्रांगण में कही गई गीता बार-बार जन्म लेनी चाहिए। गीता को कंठस्थ नहीं हृदयस्थ करना है। गीता दिव्य जीवन का द्वार है, देवत्त्व की दिशा में कदम बढाने की सत्प्रेरणा है। इसलिए आवश्यक है कि हम बचें-काम से, क्रोध से, लोभ से। काम-क्रोध-लोभ की झाड़ियों में तन की मन की चदरिया फँस जाती है।

काम :– व्यक्ति को संसार से बाँधे रखता है। व्यक्ति काम और क्रोध में उलझा हुआ है। काम जब कुण्ठित हो जाता है तो वह क्रोध बन जाता है।

क्रोध – क्रोध जुड़ा हुआ है अपेक्षा बनाम उपेक्षा से। व्यक्ति की अपेक्षाएँ उपेक्षित होंगी तो व्यक्ति क्रोधित हो ही जायेगा। मैं और मेरे का भाव अपेक्षाओं को जन्म देता है। नासमझी में मैं और मेरे भाव को हमारी नासमझी का सहारा मिल जाता है। अहम् से मुक्त, ममत्त्व से मुक्त व्यक्ति निरपेक्ष रहता है। क्रोध से परहेज रखो, सहना सीखो, मौन धारण करना सीखो।

लोभ – लोभ अर्थात्, मन की वह स्थिति जो लुभा ही जाती है, व्यक्ति को खींच ही लेती है, बाँध ही लेती है। लाभ का लोभ आदमी से क्या-क्या करवा लेता है यह सबसे भयंकर फिसलन का मार्ग है। लोभ मन का कब्ज है, कब्ज का काम है मल को पेट में इकट्ठा रखना। लोभ को मिटाने का तरीका त्याग है।

काम, क्रोध, लोभ तीनों नरक के द्वार कहे गए हैं, ये तीनों व्यक्ति को संसार में बाँधे रखते हैं।

गीता हृदय से सम्बन्ध रखती है। गीता का दिमाग से तर्क से कोई सम्बन्ध नहीं है। गीता हृदय का द्वार खटखटाती है। गीता की किरणों का सम्बन्ध केवल हृदय से है। हृदय में श्रद्धा का निवास है, इसी में व्यक्ति का प्रेम बसता है यह प्रेम, शान्ति और आनन्द का आधार है, अनुष्ठान है। श्रद्धा एक सौपान है, मार्ग है।

दान – दान अर्थात् देना और इसी में आनन्द का अनुभव करना। बेमन का दान सात्विक दान नहीं है। वह राजसी, तामसी दान ही है। देकर आदमी उसे अपना कर्तव्य समझे वही सात्विक ज्ञान है। कुछ देना है तो प्रेमपूर्वक, प्रसन्नतापूर्वक, श्रद्धापूर्वक दो। अपने द्वार पर आया आदमी खाली हाथ न लौटे। देने के बाद भूल जाओ, उस पर अपनी दृष्टि गड़ाए मत रखो। दे दिया सो पुण्यार्थ दे दिया, उसके उपयोग पर ध्यान क्यों देना, उपयोग पर अपना अधिकार क्यों जताना? जो दे दिया वह अब हमारा नहीं रहा। श्रद्धापूर्वक दिया है तो उस पर दृष्टि क्यों?

गीता के इस लक्षण को हम क्यों भूलें कि योग कुशलता का नाम है– **''योगः कर्मसु कौशलम्''** कर्म कुशलता साधी जाती तो आज दरिद्रता क्यों आती? गीता ने ज्ञान के साथ तीन शर्तें लगाई-1. श्रद्धा, 2. तत्परता और 3. जितेन्द्रियता– **''श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।** हमें अपनी शिक्षण प्रणाली में ज्ञान का यह स्वरूप अपनाना होगा। गीता की शिक्षा यही है कि हम अपने-अपने व्यक्तित्व की उस विशेषता को पहचाने जिससे हम अपने व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास कर सकें। गीता के अधिकारी के लिये भक्ति, श्रद्धा और अनुसूया अर्थात् ईर्षा के अभाव की शर्त लगाई गई है। बहुत पढे लिखे होने की कोई शर्त नहीं लगाई और न बहुत बुद्धिमान होने की शर्त लगाई गई। परम सत्य परम सरल है। सब कुछ भगवदर्पण करके सन्तुष्ट रहो। इससे ज्यादा सरल और क्या हो सकता है? सब भार भगवान पर, स्वयं निर्भार हो जाओ।

लेकिन बुद्धि इतना सरल होने नहीं देती, वह तर्क करती है। समर्पण का क्षेत्र प्रेम का है, तर्क से समर्पण नहीं होगा। भक्ति में समर्पण घटित हो जाएगा। भक्ति में समर्पण घटित होता है, समर्पण में हम कर्त्ता नहीं होते। श्रीकृष्ण ने केवल श्रद्धापूर्वक ज्ञान की बात नहीं कही, ज्ञान यज्ञ के द्वारा भगवान अर्थात् समष्टि को तृप्त करने की बात भी

कही है। यहाँ स्वार्थ और परार्थ दोनों परमार्थ में एकाकार हो जाते हैं।

गीता का सबसे बड़ा सन्देश यही है कि हम **कर्मयोगी बनें, श्रमशील बनें**। वह समाज या राष्ट्र कभी उन्नति (प्रगति) नहीं कर सकता जिसमें आलस्य, प्रमाद अकर्मण्यता की दीमक लग गई है। कर्मयोग से हमने यदि अपना मुँह मोड़ लिया तो हमारी कौम (समाज), हमारे राष्ट्र को गर्त में जाने से कोई नहीं रोक पाएगा। कर्म और श्रम से जी चुराने वाले समाज और राष्ट्र का पतन अवश्यंभावी है। इसलिए सुबह उठते ही श्रम और सृजन में लग जाना चाहिए। सृजन के गीत गाओ, धरती को स्वर्ग बनाने का श्रम (कर्मयोग) से ही होगा। हमारे सामने श्रम से ही हमारा घर और हमारा समाज सुधरेगा।

इसलिए जागो! क्षत्रिय जागो, कर्मयोगी बनो, यही गीता का सन्देश है। इसी में रजपूती की, क्षत्रियत्त्व की शान है, आन है, बान है – आन-बान-शान है।

इसलिए गीता हमारे जीवन का गीत बन जानी चाहिए। क्या है जीवन की गीता के सूत्र? छोटी-छोटी बातें जीवन में ढल जाएँ तो बड़े-बड़े काम बन जाते हैं। ध्यान रहे :-

- जीवन में कभी दोहरी जिन्दगी न जियें। बाहर कुछ और भीतर कुछ यही है दोहरी जिन्दगी। आरोपित मुखौटे को उतारें, बाहर मुस्कान और भीतर कुटिलता भेद को समाप्त करें। दो मुँहें व्यक्ति कहेंगे कुछ और करेंगे कुछ। ऐसे लोग काफी खतरनाक होते हैं।
- व्यक्ति हमेशा अपने व्यवहार से अपने व्यक्तित्व को प्रभावी बना सकता है, इसलिए आवश्यक है व्यक्ति अपने दायित्व का भली प्रकार निर्वहन करे। अच्छे कार्यों का श्रेय आप लेना चाहते हैं तो अवांछित (बुरे) कार्यों के घटित होने पर उनकी जिम्मेदारी भी आप लें। बुरे कार्यों की जिम्मेदारी दूसरों पर न डालें। दूसरों के प्रति हितकारी सोच व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावी बनाता है।
- व्यवहार को प्रभावी बनाने के लिये जरूरी है कि हम कभी किसी की आलोचना न करें। न औरों की कभी आलोचना करें न उनकी आलोचना कभी सुनें। आज जो हमारे सामने किसी की आलोचना कर रहा है वह कल औरों के सामने हमारी आलोचना भी कर सकता है।
- व्यवहार को प्रभावी बनाने के लिये शब्दों का चयन सावधानी से करें, कई बातें सोचने की तो होती हैं पर कहने की नहीं होती। बुद्धिमान सोचकर बोलता है और बुद्धू बोलकर सोचता है। गलत टिप्पणी करना और व्यंग में अपने मन की बात कहना उचित नहीं है। वाणी का बहत्तर उपयोग करना सीखें। मुँह से निकले हुए शब्द कभी लौटाये नहीं जा सकते।
- व्यवहार में न अकड़ दिखाएँ न हीनता। मन का निर्धन व्यक्ति अपनी शेखी बघारेगा, अज्ञानी अपने को ज्ञानी ही मानकर चलता है। जिसे अपने अज्ञान का बोध हो जाय, वही वास्तव में ज्ञानी हो जाता है। अहंकार किसका और कैसा?
- अन्यों के साथ शिष्टता से पेश आएँ, वह आपकी पत्नी या सन्तान ही क्यों न हों, उनके साथ सदा शालीनता का व्यवहार करें। अपने घर में ही यदि तू-तू मैं-मैं बोलेंगे तो बच्चे भी वैसा ही सीखेंगे।
- आप किसी को मान नहीं दे सकते तो कम से कम अपमान की भाषा तो मत दीजिए। याद रखें-जो दूसरों को अपमानित करता है किसी दिन उसे भी अपमानित होना पड़ सकता है। सफल लोग सदा अपने व्यवहार को शालीन, शिष्ट, विनम्र, विनयी खुशनुमा और आकर्षक बनाए रखने का प्रयास करते हैं। ईश्वर से प्रार्थना करिए कि वह भले ही हमारे प्रवचन को कमजोर कर दे, पर हमारी शालीनता कभी हमसे न छीने। ऐसा न करे कि कोई सम्पन्न (बड़ा) आए तो उसके सम्मान में गलीचे बिछाएँ, किन्तु कोई गरीब (छोटा) आए तो उसे बैठने को भी न कहें और उसके अभिवादन का जवाब भी न दें।

- अपने उठने-बैठने, चलने-फिरने, बोलचाल, पहनावे और व्यवहार में शालीनता का ध्यान रखने वाला अपनी कुलीनता का परिचय स्वयं अपने आचरण से देता है। शालीन व्यवहार सदा सुन्दर बनाए रखता है।
- जीवन में रंग-रूप और धन की इतनी कीमत नहीं है जितनी कि नेक व्यवहार, श्रेष्ठ आचार और निर्मल विचारों की। चरित्र और व्यवहार में सामञ्जस्य (मेलजोल) बना रहे। सदा खुले दिमाग के रहें, खाली दिमाग के नहीं। हर एक की बात को खुले दिमाग से सुनें फिर चाहे स्वीकारें या अस्वीकार करें परन्तु सुनने के लिये दिमाग सदा खुला रखें।
- अपने व्यवहार को प्रभावी बनाने के लिये जरूरी है कि हम अपने विचारों को शुभ और बहत्तर बनाएँ। विचार और व्यवहार का संतुलन बना रहना चाहिए। व्यवहार एक कला है, किसी से मिलते समय हीनता का भाव न रखें, न ही हीन भावना के विचार व्यक्त करें। याद रखें-सूरज की किरणें केवल हमारी परछाइयाँ बनाने के लिये नहीं, बल्कि हमारे जीवन को प्रकाशित करने के लिये हैं। रोशन करें सूरज की किरणों से हम स्वयं को और अपने सपनों को।
- सदा सत्य बोलें, मधुर बोलें, ऐसे सत्य को न ही बोलें जो दूसरे की भावना को ठेस पहुँचाए। दूसरों की कमजोरी की हंसी न उड़ाएँ, व्यंग्यात्मक शैली से सदा बचें।
- हम चित्र तो नहीं बना सकते किन्तु चित्र में कमियाँ निकाल सकते हैं। यह आदत अच्छी नहीं है, इसे सुधारना चाहिए।
- अपनी बातें दूसरों को कहने की हमारी आदत है तो दूसरों की बातें सुनने की भी आदत डालें। धैर्य रखें, उग्रता से बचें।
- किसी की पीठ पीछे टिप्पणी नहीं करनी चाहिए। सदा विनयी बने रहना चाहिए। जो जितना महान् होता है वह उतना ही विनम्र होता है। कैरी जब तक कच्ची होती है तभी तक अकड़ कर रहती है, रस से भरते ही माधुर्य से भर जाती है। कैरी चुपके-चुपके आम बन जाती है।
- जीवन में ईमानदारी से औरों की प्रशंसा करना भी सीखें, खुशामदी की कोशिश न करें। गलती सबसे होती है, इस पर टिप्पणी करने की अपेक्षा उसकी प्रशंसा करके ही हम अपनी प्रशंसा का प्रसाद पा सकते हैं। कभी भी किसी की हंसी न उड़ाएँ, मजाक करना वापस मजाक बनकर ही लौटेगा। जीवन में कुछ नहीं, एक ''ईको'' जैसी व्यवस्था है। इस जैसा बोलेंगे वैसा ही वापस आएगा।

ये हैं- गीता के सूत्र, हमारी जीवन गीता के सूत्र, हमारे राजपूत (क्षत्रिय) होने और बने रहने के सूत्र। परखें अपने आपको कि हम कहाँ हैं? कहाँ थे? कहाँ से चले थे? और कहाँ पहुँचे हैं हम? क्या ये सूत्र हमें अपनी दैनिक दिनचर्या में कभी याद रहते हैं, अपने आपको टटोलें कि इनमें से कितने सूत्रों की झलक हम अपने जीवन में देख रहे हैं-देख पाते हैं। गीता का कर्मयोग हमारे जीवन में कितना उतरा है, ज्ञानयोग के हम कितने आसपास हैं और कि भक्तियोग और वैराग्य के प्रवचनामृत चखकर हम कहीं बेपरवाह खुशामदी और चापलूसी की संकड़ी गलियों में ही तो कहीं उलझे नहीं हैं। कैसा है हमारा स्वभाव? स्वभाव बिगड़ेगा तो कोई अपना नहीं होगा, स्वभाव सुधरेगा तो यह दुनिया अपनी हो जाएगी। आस्थावान लोग भली प्रकार चिन्तन करके करने योग्य कर्म करते हैं, चिन्ता नहीं करते, चिन्ता से कोई दूसरा हमें छुटकारा नहीं दिला सकता। हमें स्वयं ही सही दिशा में सोचने, अपनी दिशा में परिवर्तन करने तथा फल को ईश्वर की इच्छा पर छोड़कर कर्म में जुटे रहना है तो जरूरी है कि हम परखें अपने आपको, अपने व्यवहार को और अपने आचरण को। आखिर कब उतरेगा पूज्य तनसिंहजी का क्षत्रिय युवक संघ हमारे जीवन में?

छलनी रखता हाथ में सब छानेगा वक्त।
नीर क्षीर का ज्ञान है वक्त बहुत ही शख्त।।

तज्जपस्तदर्थ भावनम् (समाधि पाद 28)

जपो तो उसकी भावना के साथ जपो। प्रणव का

पुन: पुन: चिन्तन करते हुए जपो। भाव से जपो, कुभाव से जपो, अन्न खाकर जपो, अलसाकर जपो, श्री राम के स्मरण (तनसिंहजी के स्मरण) से सर्वतोमुखी मंगल होगा ही। क्या हमारे हृदय से काम, क्रोध, लोभ आदि विकार दूर हुए? सब जगह हमें श्रीराम (संघ में सब जगह तनसिंहजी) और क्षत्रिय युवक संघ दिखने लगे? वैर, विरोध, घृणा, इर्षा, द्वेष, राग, तिरस्कार, उपेक्षा, व्यंग से हम मुक्त हुए? हमारा जीवन (सांघिक जीवन) मंगलमय कल्याणमय बना?

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन''

कर्तव्य कर्म में तेरा अधिकार है, फल में नहीं, और यह भी कि अकर्म में तेरी आसक्ति न हो, अर्थात् कर्म न करने में भी तेरी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। अत: संसार की, समाज की सेवा करो सेवा के साथ अपना सम्बन्ध मत जोड़ो। तत्परता से, सुचारू रूप से, योग्यता से, मनोयोग से कर्म करना है। क्योंकि मनुष्य शरीर (क्षत्रिय कुल में) मिला ही सेवा के लिए है, भोग के लिये नहीं। सेवा करके भगवद्प्राप्ति करने में ही मनुष्य जीवन (क्षत्रियत्व) की सार्थकता है।

यही हैं जीवन की गीता के सूत्र।

पृष्ठ 15 का शेष

मेरी साधना

ही है। क्षत्रिय का पर्याय शक्ति है। 'क्षत्रिय' शब्द का उच्चारण करते ही मन में शक्ति का संचार होने लगता है।

यहाँ साधक कहता है-''तो मैं शक्ति का उपासक क्यों अशक्त साधनों को प्रयोग में लाने लगा, देवी!'' इस विधान पर आज हमें गंभीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। हम क्षत्रिय शक्ति के उपासक आज कौन से अशक्त साधनों का प्रयोग कर रहे हैं? तो आज हम अपने चारों तरफ देखते हैं कि लोग वीरता की बातें करते हैं किन्तु जहाँ अपनी निगाहों के सामने जो अनिष्ट हो रहा है, वहाँ अपने वीरत्व की भूमिका निभाने को तैयार नहीं हैं। जहाँ कुछ खराबी हो रही है, अनीति हो रही है, दुर्बलों को बिना कारण सताया जा रहा है, वहाँ से हम मुख मोड़ लेते हैं। हमारी साहसवृत्ति क्षीण होती जा रही है। हमें भी मृत्यु का भय लगने लगा है। हमारा इतिहास, शास्त्र, पुराण यह बता रहे हैं कि क्षत्रिय वचन के पक्के होते हैं। वचन पालन हमारी बड़ी पहचान थी। हम आज भी बार-बार यह दुहाई देते हैं-'प्राण जाय अरु वचन न जाय' लेकिन क्या आज हम अपने इस कुलधर्म का पालन करते हैं? समाज में हमारी विश्वसनीयता पर प्रश्न उठने लगे हैं। शराब पीकर गाँव में टंटा-फशाद करना वीरता नहीं है। यह तो मवालीगिरि है। जिस गाँव में क्षत्रिय का केवल एक ही घर हो, उस गाँव के लोग निर्भय होकर अपना जीवन यापन करें तभी उस क्षत्रिय का क्षत्रिय होना सार्थक है।

साधक की यही अभिलाषा है, अभीप्सा है कि हम पुन: अपने क्षत्रियत्व को प्राप्त करें। जिसका साध्य, साधन और साधना एकमात्र शक्ति हो। **(क्रमश:)**

पृष्ठ 26 का शेष

विचार-सरिता

इस मैं के अस्तित्व को जानने के लिये तो अभी हमारे पास जो समय है, यह बड़ा ही अनुकूल समय है। इस सबके लिये हमें सद्‌गुरु की शरण में जाकर मैं का परिचय पाना होगा। यह परिचय किसी शास्त्र वेद रामायण या गीता पढ़ने से नहीं मिलेगा। क्योंकि यह परिचय किसी क्रिया का मोहताज नहीं है। किसी साधन से भी उसकी सिद्धि नहीं हो सकती। यह परिचय तो कुछ भी नहीं करने में छुपा हुआ है। हमारी तो आदत ही कुछ करने की पड़ी हुई है, इसलिए पूजा करते हैं, तिलक लगाते हैं, आरती करते हैं, भजन करते हैं। बस करने की मान्यता से मुक्ति मिले तो उस नहीं करने की स्थिति में हमें अपने आपका परिचय मिलेगा। वृत्ति के खालीपने में हम स्वयं हैं। इस बात को दृढ़ता से स्वीकार कर लें तो मोक्ष स्वत: सिद्ध है। सब भटकाव बंद हो जाएगा। आनंद ही आनंद हो जाएगा।

ओम् शान्ति! ओम् शान्ति!! ओम् शान्ति!!!

*

चित्रकथा – 'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'

एक दिन...
भैय्या वीरम! जंगल में बच्चे के रोने की आवाज़!
उधर उस पेड़ पर पोटली सी बँधी है·क्या है यह?
पेड़ पर लटकी पोटली खोलते हैं··
कौन छोड़ गया इस प्यारी सी बच्ची को!
रामदेव वापस टांग दो इसे, पता नहीं किसकी है।
इस घने जंगल में कैसे छोड़ दें वीरम भैय्या!... इसके माता-पिता ने जो अपराध किया है वह मैं नहीं कर सकता.. आज से इसकी ज़िम्मेदारी मेरी है
यह हमें पेड की डाली पर मिली है, तो नाम भी डाली रखता हूं मैं
'डाली' को रामदेव महल में ले आते हैं
पहले छोटी जात के लोगों के साथ उठना बैठना और आज लावारिस बच्ची को उठा लाये!..-अजमाल जी देख लिया आपने रामदेव को सिर पर बैठाने का परिणाम···
समाज की मान्यताएं मर्यादाएं तोड़ने में भी संकोच नहीं है इसे·
यह तो रामदेव की दयालुता है
काकाश्री बच्चे तो भगवान का रूप होते हैं... इन्हें अपनाना तो एक पुण्य का कार्य है... पिता श्री यह बच्ची तो प्रभु के उपहार के रूप में मिली है
प्रभु के दिए उपहार को हम कैसे ठुकरा सकते हैं। ··आज से यह मेरी बहिन है
अजमाल जी पुत्र की बात मान लेते हैं
सुगना-लाछो दीदी! सम्भालो अपनी छोटी बहिन को! यह मेरी तीसरी बहिन है
नर सेवा को समर्पित किशोर रामदेव के सम्मुख नई चुनौती थी- 'नर भक्षी तांत्रिक भैरव' जिससे क्षेत्र के लोग आतंकित व भयभीत थे
पिताजी! तांत्रिक भैरव के आतंक से लोगों को मुक्ति दिलाने का दायित्व राजा व क्षत्रिय होने के नाते हमारा ही है ना?
पुत्र! उसने तंत्र विद्या से इतनी शक्ति अर्जित कर ली कि आमजन तो क्या सैनिक भी सम्मुख आने से डरते हैं।
पिताजी मैंने निश्चय किया है कि इस आतंक का अंत करूंगा
पुत्र तुम अभी बालक हो और वह नर भक्षी...
बाल कृष्ण कंस का वध कर सकते हैं तो मैं क्यों नहीं?... आप का और प्रजा का आशीर्वाद भी मेरे साथ है

अपनी बात

हम अक्सर सुनते हैं कि महत्त्वाकांक्षा न हो तो फिर जीवन में विकास ही नहीं होगा। हाँ, जिस विकास को अभी हम जानते हैं महत्त्वाकांक्षा के द्वारा ही होता है। लेकिन सच में क्या जीवन का विकास हुआ है? कभी यह सोचा कि जीवन का विकास हुआ है? क्या विकास हुआ है? हजार साल पहले से हमारे पास अच्छे कपड़े हैं, इसलिए विकास हो गया? या कि हमारे पास बैलगाड़ियों की जगह मोटर गाड़ियाँ हैं, इसलिए विकास हो गया? अब हम झोंपड़े की जगह सीमेंट कंक्रीट के बड़े मकान में रहते हैं, इसलिए विकास हो गया? ये जीवन के विकास नहीं हैं। मनुष्य के हृदय में, मनुष्य की आत्मा में कौनसी ज्योति जगी है, जिसको हम जीवन का विकास कह सकें? कौनसा आनन्द स्फुरित हुआ है, जिसको जीवन का विकास कहें? मनुष्य के भीतर क्या फलित हुआ है, कौन से पुष्प उभरे हैं, जिसको विकास कह सकें? वास्तव में इस प्रकार की महत्त्वाकांक्षा से जीवन में कोई विकास दिखाई नहीं पड़ता।

एक कोल्हू का बैल चक्कर काटता रहता है अपने घेरे में, वैसा ही मनुष्य की आत्मा चक्कर काट रही है। हाँ, कोल्हू के बैल पर कभी रद्दी कपड़े पड़े थे, अब उस पर बहुत कीमती और मखमली कपड़े पड़े हैं, यह जीवन का विकास नहीं होता। कोल्हू के बैल पर ही हम हीरे-जवाहरात लगाकर कपड़े टांग दें, तो भी जीवन का विकास नहीं हो जाता। कोल्हू का बैल कोल्हू का बैल है और चक्कर काटता रहेगा। उस चक्कर काटने को ही वह सोचता है कि मैं आगे बढ रहा हूँ, आगे बढ रहा हूँ। मनुष्य आगे नहीं बढ रहा है। हजारों साल से उसमें कोई परिलक्षण ज्ञात नहीं हुए, जिससे वह आगे गया हो और उसकी चेतना ने नए तल छुए हों, उसकी चेतना ऊर्ध्वगामी हुई हो, उसकी चेतना ने आकाश की कोई और अनुभूतियाँ पाई हों, उसकी चेतना पृथ्वी से मुक्त हुई हो, उठी हो, परमात्मा की तरफ बढी हो। तब यह कोई जीवन का विकास नहीं हुआ।

महत्त्वाकांक्षा की दिशा बाह्य हो तो जीवन का विकास हो ही नहीं सकता। विकास हो सकता है कि मकान बड़े होते चले जाएंगे। एक घड़ी आ सकती है कि मकान इतने बड़े हो जाएँ कि आदमी को खोजना मुश्किल हो जाए। आदमी इतना छोटा हो जाए। और एक घड़ी आ सकती है कि सामान इतना ज्यादा हो जाए कि आदमी अपने ही हाथ के द्वारा बनाए गए सामान के नीचे दब जाए। यह हो सकता है कि एक दिन यह तथाकथित विकास इतना हो जाए कि हमारे पास सब कुछ हो, सिर्फ आदमी की आत्मा न बचे।

एक बार एक नगर में आग लग गई और एक भवन जल रहा था। लपटों में घिरा था। भवन पति बाहर खड़ा था और रो रहा था, आँसू बह रहे थे। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे, क्या न करे। लोग मकान में जा रहे थे और मकान का सामान बाहर ला रहे थे। एक संन्यासी भी खड़ा हुआ देख रहा था। जब सारा सामान बाहर आ गया तो सामान लाने वालों ने पूछा, कुछ और बच गया हो तो बताएँ क्योंकि अब अन्तिम बार भीतर जाया जा सकता है। उसके बाद फिर आगे संभावना नहीं है, लपटें बहुत बढ गई हैं। यह आखिरी मौका है कि हम भीतर जा सकें। भवनपति ने रोते हुए कहा कि मुझे कुछ भी सूझ नहीं पड़ता। एक बार और जाकर देख लो, कुछ हो तो ले आओ। वे भीतर गए, भीतर से रोते हुए वापस लौटे। भीड़ लग गई। सबने पूछा क्या हुआ? उन्होंने कहा कुछ कहते भी नहीं बनता। हम तो भूल में पड़ गए। हम तो सामान बचाने में लग गए। मकान मालिक का इकलौता लड़का भीतर सोया था, वह जल गया और समाप्त हो गया। सामान हमने बचा लिया, सामान का मालिक तो खत्म हो गया। वह संन्यासी जो वहाँ खड़ा था, उसने अपनी डायरी में लिखा, ऐसा ही पूरी दुनिया में हो रहा है। लोग सामान बचा रहे हैं और आदमी समाप्त होता जा रहा है।

क्या इसको विकास कहेंगे? यह जीवन का विकास नहीं है। अगर यही जीवन का विकास है तो परमात्मा ऐसे विकास से

बचाए। लेकिन महत्त्वाकांक्षा यही कर सकती थी–सामान बढा सकती थी, शान्ति नहीं बढा सकती थी। शक्ति बढा सकती थी, शान्ति नहीं बढा सकती थी। महत्त्वाकांक्षा दौड़ा सकती थी, कहीं पहुँचा नहीं सकती थी।

फिर क्या हो? अगर महत्त्वाकांक्षा न हो, तो क्या हो? महत्त्वाकांक्षा नहीं, प्रेम होना चाहिये। किससे प्रेम? अपने व्यक्तित्व से प्रेम। अपने व्यक्तित्व के भीतर जो छिपी हुई संभावनाएँ हैं, उनका विकास करने से प्रेम। अपने भीतर जो बीज की तरह पड़ा है, उसे अंकुरित करने से प्रेम। प्रतियोगिता और महत्त्वाकांक्षा दूसरे की तुलना में सोचती है। विकास की सही दशा दूसरे की तुलना में नहीं सोचती। अपने विकास की, अपने बीजों को पूर्ण विकसित करने की भाषा में सोचती है। इन दोनों बातों में फर्क है। उदाहरण के लिये अगर कोई संगीत सीख रहा है, इसलिए सीख रहा है कि दूसरे जो संगीत सीखने वाले लोग हैं, उनसे आगे निकल जाए, तो उसे संगीत से न कोई प्रेम है, न अपने से कोई प्रेम है। उसे दूसरे संगीत सीखने वालों से ईर्ष्या है। न तो उसे अपने से प्रेम है, न उसे संगीत से प्रेम है। उसे दूसरों से जलन है और उनसे आगे निकलना चाहता है।

लेकिन क्या यही एक दिशा है संगीत सीखने की? और क्या ऐसा व्यक्ति संगीत सीख पाएगा, जिसके मन में ईर्ष्या है, जलन है? नहीं, संगीत के लिये तो शान्त मन चाहिए, जहाँ न ईर्ष्या हो, न जलन हो। ऐसा व्यक्ति संगीत नहीं सीख पाएगा और जो सीखेगा वह झूठा संगीत होगा, जो न उसके प्राणों में आनन्द भर पाएगा, न उसके प्राणों में कोई पुष्प खिलेंगे और न शान्ति आएगी। एक और रास्ता भी है कि उसका संगीत से प्रेम हो। संगीतज्ञों से ईर्ष्या और जलन नहीं, प्रतियोगिता नहीं, प्रतिस्पर्धा नहीं, बस अपने से प्रेम हो और संगीत से प्रेम हो। अपने भीतर जो संगीत की संभावना है, वह बीज अंकुरित होकर पौधा बन सके, कैसे संगीत के फूल अपने भीतर खिल सके, इस दिशा में ही सारी चेष्टा हो। किसी से प्रतियोगिता नहीं, किसी से संघर्ष नहीं।

मैं संघ का स्वयंसेवक हूँ। मेरे विकास की दिशा क्या है? मैं अपने व्यक्तित्व से प्रेम करूं। क्या अपने अहंकार को पनपाऊँ? नहीं, मैं संघ साधना का साधक हूँ तो अपने व्यक्तित्व में वह निखार लाने में ही मेरी पूरी चेष्टा हो, जैसा संघ चाहता है। किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं, किसी से आगे निकलने की राह नहीं। मेरे व्यक्तित्व को संघ के अनुकूल निखारने के लिये ही मेरे प्रयत्न हों और संघ से प्रेम हो जहाँ मुझे मेरी जीवन के विकास के लिये प्रशिक्षण मिलता है, प्रोत्साहन मिलता है।

संसार में जब तक इस भाँति प्रेम आधारित जीवन–दृष्टि नहीं होगी तब तक राजनीति से छुटकारा नहीं हो सकता। इच्छाओं का परिणाम ही राजनीति है। महत्त्वाकांक्षा सिखाएँगे, सिखाने की गलत शिक्षा का ही कारण है राजनीति। गलत सभ्यता और संस्कृति का फल है, जो सिखाती है, दूसरों से आगे बढो। नहीं, सिखाना यह चाहिए कि तुम पूरे बनो। तुम पूरे खिलो, पूरे विकसित बनो। पर प्रतियोगिता सिखाने का दुष्परिणाम यह होता है कि जो संभावना, जो प्रतिभा हमारे प्राणों में नहीं थी उसके बीज महत्त्वाकांक्षा ने हमारे भीतर डाल दिए। एक व्यक्ति अद्भुत बढई हो सकता था, वह एक मूर्ख डॉक्टर होकर बैठ जाता है। जो एक अद्भुत डॉक्टर बन सकता था, वह किसी अदालत में सिर पचाता वकील हो जाता है। तब परिणाम में सब गड़बड़ होता है। जहाँ हो सकते थे, वहाँ हो नहीं पाते, जहाँ नहीं होना चाहिए वहाँ हो जाते हैं। जिन्दगी बोझिल और कष्टपूर्ण हो जाती है। हम क्षत्रिय के घर में पैदा हुए हैं, हमारे अन्दर क्षत्रियत्व का पुष्प खिलने की पूरी संभावना है। इसीलिए क्षत्रिय युवक संघ क्षात्र–संस्कारों का प्रशिक्षण और पोषण देकर हमारे व्यक्तित्व को निखारने का कार्य करता है। हम स्वयं के जीवन के विकास को प्रेम करें, उस विकास की राह प्रशस्त करने वाले संघ से प्रेम करें। अपने जीवन विकास के अतिरिक्त पद, प्रतिष्ठा, अधिकार आदि प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा तो साधना में नासूर बन जाती है।

*

पूज्य नारायणसिंह जी
की जयन्ती पर हार्दिक शुभकामनाएं

30 जुलाई

विरेन्द्र सिंह तलावदा
Contractor
(M) 94143-96530

बादलों से छाए नील गगन तले,
झूमता हमारा मस्त कारवाँ चले।
कोई हमसे पूछे कि जाते हो कहाँ,
कौम की तासीर हमें ले जाए जहाँ।।

पू. श्री नारायणसिंह जी रेड़ा
की जयन्ती पर हार्दिक शुभकामनाएं

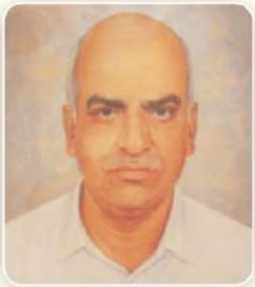

जीने के बहाने मुझे आए नहीं,
रंग बिरंगे रंग मुझे भाये नहीं।
तेरे ही रंग में जीने के ढंग हैं,
प्राणों में प्राण को जोड़ दे।।

महेन्द्रसिंह पांची (M) 98255847555

Marudhar Defence International School

(Play Group to Secondary) Pipar City, Jodhpur (An English Medium School)

SCHOOL FEATURES:

- **Large building with large play ground**
- **Digital Class Rooms**
- **Teaching by Tabs**
- **Best Faculties**
- **GPS Enabled Transport**
- **Safe Environment for each Student**

Arvind Singh Chundawat
(School Director)

10 Branches in 6 Cities Merta City, Merta Road, Degana, Jaipur, Phulera, Pipar City

Principal Dr. Prerna Champawat School Contact : 7340603366, 7023661658

जुलाई, सन् 2020
वर्ष : 57, अंक : 07

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह